द्वार के पार

डॉ. अमरेन्द्र

द्वार के पार

(गजल-संग्रह)

द्वार के पार

डॉ. अमरेन्द्र

मनप्रीत प्रकाशन
दिल्ली

प्रथम संस्करण
२००३

सर्वाधिकार ©
कवि

प्रकाशक
मनप्रीत प्रकाशन

आवरण
प्रभाकर

Dwar Ke Paar (Gazal)
By Dr. Amrendra

विराट कल्पनाओं के चित्रकार
भाई
प्रभाकर
के लिए मेरी यह कृति
जिनके रेखाओं-रंगों की भाषा के सम्मुख
साहित्य के बोलते ाब्द मौन हो जाते हैं।

डॉ. अमरेन्द्र : देशी मुहावरों का गजलकार

—डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय

डॉ. अमरेन्द्र के विषय में जानकारियों से स्पष्ट है कि गजलियात और गीतों के क्षेत्र में अमरेन्द्र के प्रयत्न प्रशंसनीय हैं । उनकी रचनाएँ लोकप्रिय स्तर की हैं और उनमें उनके व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है ।

अमरेन्द्र की राग-अनुराग की रचनाओं में जहाँ कोमल सम्वेदनाएँ और प्रकृति के चित्र हैं, वहीं यथार्थ पर कचोटक व्यंग्य भी हैं,

यह न समझें सही लोग संसद में हैं
कुछ किराए के हैं, कुछ उछाले हुए हैं ।
XX
जब भी देखो हर कोई ही अनमना है
सोच लो तूफान की सम्भावना है ।

'सृजन' के अन्तर्गत अमरेन्द्र की कई रचनाएँ छपी हैं । वे अपनी सादगी, सच्चाई और पारदर्शिता से ध्यान आकर्षित करती हैं । साहित्य के विशेषज्ञ या प्रयोगशील व्यक्ति इस प्रकार के लेखन को भले ही कम पसन्द करें, पर जनसमूह को ये रचनाएँ आन्दोलित कर सकती हैं—और यही इनकी भूमिका है ।

अमरेन्द्र की गजलों का मुहावरा उर्दू-ए-मुअल्ला का मुहावरा नहीं, वह स्वदेशी या लोकस्पर्शी है, अतः वह हिन्दी के गजलकार हैं, उर्दू के नहीं,

आज कल भेड़ियों में यही चर्चा है
हो गई है बहुत ही शिकारी गजल ।

और आज जो जनसाधारण को जनतंत्र के नाम पर प्रवंचित किया जा रहा है, इन प्रवंचक वर्गों और जमातों के विरुद्ध शिकारी गजल की ही जरूरत है ।

हम अमरेन्द्र के लेखन की कद्र करते हैं । आमीन् !

7 डी 25ए जवाहर नगर, जयपुर-4

गीतकार, गजलकार डॉ. अमरेन्द्र जीवन की बुलन्दी के शायर हैं

—प्रो. फूलचन्द मानव

शब्द-शिल्पी अपने इतिहास की रचना स्वयं करता है । वाक्य, भाव, संवेदना और कथ्य मिलते हैं, तो एक कालजयी भवन खड़ा हो जाता है । सुरक्षित रहता है यह—पत्रिकाओं के पन्नों में, पुस्तकों के अंदर, पाठकों की मानसिक यात्रा के साथ-साथ । और समय इसे सँवारने लगता है । वर्षो ं-दशकों बीतने पर भी रचनाएं पुरानी नहीं पड़तीं । इनके नैन-नक्श मुखर होते जाते हैं, बोलते-बतियाते हैं और लेखक, रचनाकार यों हमारे मन में बस जाते हैं ।

अमरेन्द्र एक ऐसे ही साहित्यकार हैं । हमारे अंग-संग, आस-पास विकसित सुगन्ध की तरह छाए हुए । इनकी लेखन-यात्रा में संघर्ष है, सहजता है, उपलब्धियाँ हैं, जो रुकावटों-बंदिशों को पार करती आई है । प्यार करती आई है इन्सानियत से । गीतकार, गजलकार डॉ. अमरेन्द्र जीवन की बुलन्दी के शायर हैं। एक कोमलता कठोरता को तराशती है । कठोरता विनम्रता में उतरती जाती है और बिम्ब, उपमान, शब्द-विधान—सब कविता में बहने लगते हैं । कहने लगते हैं मन की बात—मन वालों के लिए । मतवालों के लिए अमरेन्द्र का लेखन आईना है ।

लेखक या प्रसिद्ध व्यक्ति के रोशनी में आते ही एतराज होने लगते हैं । सबको भला अमरेन्द्र की कलम का करिश्मा रास कैसे आएगा ? गीतकार, गजलकार यहाँ जो भी लिखेगा, गुनगुनाएगा, किसी-न-किसी का दिल तो दहलाएगा और किसी 'पीर' का तकिया भी सरकाएगा । यहीं और यहीं से अमरेन्द्र उठते हैं, प्रतिद्वन्दी पिछड़ते हैं और रोनी सूरत में आ खड़े होते हैं । विसूरते चेहरे—जिद में कहीं-न-कहीं अड़े होते हैं, आहत से ।

डॉ. अमरेन्द्र को—लिखने का चाव—आगे धकेलता चलता है और लैण-डोरी में 'शत्रु' परास्त होते रहते हैं । भला वह भी क्या व्यक्तित्व कि आपका कोई विरोधी न हो, पर संबंधों को निभाने की कला अमरेन्द्र ही जानते हैं । नवगीत हो या बाल-साहित्य, अमरेन्द्र की कलम पत्रों-पत्रिकाओं में दूर-दूसरे प्रान्त तक लोहा मनवाती आई है । एक आंधी-सी समाई है पारदर्शी कवि अमरेन्द्र की क्रांतिकारी कलम में । यही कलम बिहार से पंजाब, चंडीगढ़ को जोड़ती है । एक-एक मोड़ पर हमें, आपको, उनके लेखन-कर्म के रू-ब-रू ला खड़ा करती है और जो साहित्य में सुगंधित-सुवासित रोशनी को तैराना जानती है ।

राजनीतिक रचनाएं या रचनाओं में राजनीति अमरेन्द्र के यहाँ पसरी है । सोच के धरातल पर शब्द-शब्द अर्थ खोलते हैं । बुनते हैं समय का ओवरकोट, जो घटाटोप मौसम में भी चमकता है—बिल्लौरी आकांक्षाओं की तरह । डॉ. अमरेन्द्र का अंदाज, शैली, शिल्प और वस्तु-कथ्य मनुष्य को जोड़ते हैं । ऐसे ही नहीं ख्याति का तम्बू तन जाता है; बन जाता है प्रेम और आत्मीयता का एक मंडप । मानव मूल्यों के साहित्य के सर्जक डॉ. अमरेन्द्र की शायरी साहित्य के माथे पर तिलक-टीका ही तो है,

मेरे घर के पिछवाड़े से
ऊपर उठकर आए चाँद
माथे पर टिकुली-सा चमचम
कितना आज सुहाए चाँद ।

सम्पर्क : 3728/22 डी., चंडीगढ़ 160022

डॉ. अमरेन्द्र की गजलें : समकालीन सच्चाइयों का खुला दस्तावेज

—डॉ. मनाजिर आशिक हरगानवी

डॉ. अमरेन्द्र की गजलें शब्द, अर्थ, लय और मात्राओं से भरपूर होती हैं और आज की जटिल जिन्दगी को बखूबी समेटती हैं । इन्होंने रूप-रंग, शृंगार के कटघरों से गजल जैसी विधा को निकाल कर सीधे-साधे जीवन की धूरियों से जोड़ा है और फन की पासदारी की है ।

निरन्तर विनाश की ओर आत्ममोहित-सी बढ़ती इस संस्कृति के परिणामों से डॉ. अमरेन्द्र आगाह कराते हुए समाज में व्यक्ति के हालात पर हमें सोचने के लिए मजबूर करते हैं,

सारे गमों का देखिये बाजार हमीं थे
और गम के भी जैसे कि खरीददार हमीं थे
00
ये और हुई बात दवा तुमको मिली है
सब जान रहे हैं ये कि बीमार हमीं थे

डॉ. अमरेन्द्र व्यक्ति की सत्ता और उसके अस्तित्व की घुटन को बड़े प्रभावशाली ढंग से अपनी गजलों में व्यक्त करते रहे हैं,

समय बड़ा कातिल लगता है
कैसे सबका दिल लगता है
जैसा है शासक इससे तो
गुण्डा ही काबिल लगता है
जैसे-जैसे भक्त जुटे हैं
मन्दिर भी महफिल लगता है
जिसको लोग समुन्दर कहते
मुझको वह साहिल लगता है
जनता गेहूँ, धान, चना, जौ
नेता सबका मिल लगता है
लोकतंत्र में हत्या-आतंक
जैसे अब हासिल लगता है

लेकिन दूसरी तरफ डॉ. अमरेन्द्र रूमान को भी नजर-अंदाज नहीं करते हैं, रूमानियत गजल का आत्म-तत्व है, और इसे बरतने में इनका अपना लहजा है,

उस बे-वफा से नजरें चुराने को जी करे
फिर भी उसी के पास ही जाने को जी करे
हमको तो हर कदम पे सताया उसी ने है
फिर भी उसी का नाज उठाने को जी करे

डॉ. अमरेन्द्र अपने आस-पास के फैले हुए सत्य और असत्य को भीतर के सृजन-लोक से जोड़कर अपनी गजलों का विशिष्ट विधान करते हैं । इस आत्मालाप में आशा-आकांक्षा के साथ रूमानी प्रतिक्रिया भी होती है । पर डॉ. अमरेन्द्र की गजलों की रूमानी कैफियत में सस्ती किस्म का आस्वाद नहीं मिलता।

डॉ. अमरेन्द्र इश्क और रूमांस की फिजा जरूर कायम करते हैं, लेकिन तलखी और व्यंग्य की विशेषता से खुद को अलग नहीं कर पाते । उनकी गजलों में महबूब न अधिक सुन्दर है, न नाजुक, न मगरूर है और न प्रेमिका के रूप में व्यक्त होता है, हाँ, वफादार और बेवफा जरूर है । आशिक और माशूक की अदाओं को शेर में ढालते वक्त डॉ. अमरेन्द्र रिवायती शायरी में माहिर नजर आते हैं ।

कलात्मक क्षमता का संबंध आत्मा की शक्ति से होता है और डॉ. अमरेन्द्र इससे पूर्ण हैं । तादात्म्य स्थापित करने की उनकी शक्ति आत्मा की शक्ति में पोसीदा है । सतर्क यथार्थ-दृष्टि और अग्रगामी चेतना हर किसी के हिस्से में नहीं आती, यह तो अपने-आप को खुला छोड़ने, परिदृश्य और जनजीवन के अंतरंग अध्ययन और आत्मानुशासन के फलस्वरूप ही आती है । डॉ. अमरेन्द्र ने जीवन के हर संदर्भ को अपनी गजलों में समाया है । रूमांस और इश्क-मोहब्बत के साथ समसामयिक राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिदृश्य पर इनकी पकड़ बहुत मजबूत है । ऐसी मजबूत पकड़ दूसरे समकालिक हिन्दी गजलकारों के यहाँ नहीं मिलती है । डॉ. अमरेन्द्र जिस युग-काल में जी रहे हैं, इसमें राजनीतिक अवसरवाद, स्वार्थान्धता, जातिवाद, साम्प्रदायिकता, धार्मिक कट्टरता और जड़वाद ने अपने खूनी पंजे के शिकंजे जिस तरह से कसे हैं, इसे वह बड़ी शिद्दत से महसूस करते हैं । दुर्भाग्य से हम एक ऐसे समाज में रह रहे हैं, जहाँ सत्ता की राजनीति के सच ने सारे राजनीतिक मूल्य तोड़ दिए हैं और जो एक मूल्यविहीन समाज के निर्माण में योग दे रहा है,

जिनके लिए घर बेचकर हम घर से बेघर हो गये
किस तरह खामोश वो कुर्सी को पाकर हो गये
क्या कहा कल तक मदारी जो बने फिरते थे आज

डुगडुगी के सामने वे लोग बन्दर हो गये

डॉ. अमरेन्द्र ने पिछली आधी शताब्दी में हिन्दी गजलों की देवी को पहली बार नये जाविये के शीशमहल और सिमेंट-कंक्रीट के जंगलों से निकालकर कच्चे घरों की दीवारों के बू-वास से मानूस किया है । यूं तो हिन्दी गजलों की जंग-नगरी में लफजों की कमानें तोड़ने वाले अनगिनत हैं, पर किसी में कुंवारी बरफ को तोड़ने की सकत नहीं थी । साहित्य में एक इंच की वृद्धि भी सदियों में रूनुमा होती है । डॉ. अमरेन्द्र जिन्दगी के नर्म और तल्ख तजरिबे को जिस तफसील और जज्बे से परिपूर्ण करते हैं, वह एक कुंवारी धरती को तोड़ने के समान है । जिन्दगी के ठोस और भरपूर हिस्सों और पहलुओं को वह बड़ी रचनात्मक, सृजनात्मक घुलावट, मानूसियत, मासूमियत और सोज से गजलिया मंजरनामा का धड़कता हुआ हिस्सा बनाते हैं, इस नई गजलिया रंगोली में तलखी बहुत है, लेकिन अगर पीने-पिलाने का जिक्र आ जाए, जो गजल की परम्परा का एक लाजमी हिस्सा है, तो डॉ. अमरेन्द्र इसे भी नए रंग-व-आहंग में पेश करते हैं। इस जिक्र में ठंडक और गर्मी दोनों है,

क्या समझा है तूने कि हम घबरा के पीयेंगे
ज्यादा जो कही तूने तो दुहरा के पीयेंगे
नासेह से सुन करके कयामत की ये बातें
थर्रा तो गए हम पर थर्रा के पीयेंगे
लहरा रहा है किस तरह वो अब्रो नौ बहार
तौबा की ऐसी-तैसी हो लहरा के पीयेंगे
बहका दिया है जिसने हमें मैकशी से हैफ
उस नासमझ को हम भी अब बहका के पीयेंगे ।

डॉ. अमरेन्द्र की गजलों में जो तड़प है, उसमें उस तीर की चुभन भी शामिल है जो जख्मी हिरण पर शिकारी अपना आखरी तीर चलाता है; ऐसी गजलें हिन्दुस्तानी मिजाज का आईनादार हैं । इनमें अरब और ईरान का माहौल और फिजा नहीं, बल्कि अपने देश की धरती की खुशबू रची-बसी है,

हौसला मेरा हिमालय जैसा
कैसे मकसद सफल नहीं होगा
00
कब तलक छाती पे बैठे यूं मूंग दलियेगा
आप पर्वत तो नहीं है कि मैं हिला न सकूं
00

आपको हक है बसी बस्ती को उजाड़ सकें
और उजड़ी हुई बस्ती को मैं बसा न सकूं
00
डर-डर के बात कहना, शराफत अगर यही
अच्छा हुआ जो मुझमें शराफत नहीं रही
00
चाँद तारों की तरह आँसू चमक सकते हैं
आज आकाश में बोलो तो उछालूं आँसू
00
उनको जब मैंने सुनाया ये अपना हाले दिल
तब उन्होंने ये कहा हमसे है कि चल देंगे
00
वो सफर भी क्या सफर है जिन्दगी का दोस्तो
जिनमें मंजिल दूर न हो, राह में पत्थर न हो
00
जहाँ-तहाँ बिन सोचे-समझे यूं ही नहीं बटाला लिख
लिखना है तो उसी तगह पर यार तू जलियांवाला लिख
00
जिन्दा है एक शख्स यही सोचकर कि वोह
दुनिया में कोई रस्म इक बेहतर चला सके
00
हाले दिल कितने ही अखबारों में छापे मैंने
एक वो कि जिन्हें पढ़ने की भी फुर्सत न मिले
00
क्या मेरी ही तरह दुनिया भी बहुत रंगीन है
पूछता था रोककर वह बादाखाना एक दिन
00
कैद है रौशनी सूरज की चुप खड़े रहिये
तीरगी हर तरफ है आप किधर जायेंगे
00
नुमाइश बन्द ही कर दूँ मैं बुलबुल की तो अच्छा है
जो गुलशन में पहुँचता है वही सय्याद होता है
00

मेरे इस बाग की मुरझाने लगीं सब कलियाँ
कौन दुश्मन है जो दुश्मन की नजर करता है

डॉ. अमरेन्द्र के अशआर में जज्बे की हरारत और अहसास की शिद्दत होती है ।

आज गजल की जुबान—ब्यान, फिक्र, अहसास और इजहार की सतह पर पुरानी, चिरकालीन गजल से बिल्कुल जुदागाना अन्दाज अख्तियार करती जा रही है, इस सिलसिले में डॉ. अमरेन्द्र के यहाँ भी एक वैयक्तिक या इनफिरादी नीति है । इनकी गजलों में एक तलाश की कैफियत मिलती है, इस तलाश में जिन्दगी की हकीकतों के तत्व शामिल हैं । यही कारण है कि इनकी गजलों में युगीनी जिन्दगी के साथ दूर तक चलने का अमल पाया जाता है, साथ-ही-साथ इनमें समाजी पहलू के जलवे भी देखने को मिलते हैं । इन तमाम बातों के बावजूद वह अपनी गजलों में किसी तरह के अनुप्राणन का दावा नहीं करते और न ही इन्सानी दुख-दर्द का उपचार वह किसी डाक्टर की तरह करते नजर आते हैं, बल्कि डॉ. अमरेन्द्र अपनी गजलों से हमारे वजूद में दुखों को सहने और उन्हें बरदाश्त करने का हौसला, विश्वास, भरोसा, हिम्मत और साहस के जज्बे जाग्रत या बेदार करने की कोशिश करते हैं । ऐसा करते समय उनकी शैली में कहीं-कहीं कटुता भी आ गई है, पर वास्तविकता के संघर्ष का अलबेला अन्दाज ही वहाँ ज्यादा है। इन्होंने अपनी गजलों को किसी काम्प्लेक्स का शिकार नहीं होने दिया है । ऐसा मालूम होता है कि उनके सामने बड़ा सवाल यह नहीं रहा है कि वह फूल फेंक रहे हैं या कांटे बिखेर रहे हैं, बल्कि ये बात पेशे-नजर रही है कि वह सच बोल रहे हैं,

शोला बुझने की नहीं और बातें क्या होगी
शोला पेट्रोल से साले ने बुझाया होगा
00
क्या बताऊँ तुम्हें कि वो क्या चाहता है
आग लगने पे साला हवा चाहता है
00
वे क्या आंधी से डरे हैं अमरेन्द्र
जिनको लहरों पे मकां मिलता है
00
लोग तो उस चांद तक आए गए
चांदनी मुझको मिली न पात भर

साफ दिल, सदाचारी और सत्यवादी डॉ. अमरेन्द्र की गजलें आईना की तरह साफ-सफ्फाफ, स्वच्छ और उज्ज्वल है, इनमें—शायर और आम जिन्दगी—दोनों को आर-पार देखा जा सकता है । इसके लिए उन्होंने ऐसी शैली और ऐसी आवाज को जन्म दिया है, जो दूर से पहचानी जाती है और जिसे प्रभात-समीर से वार्तालाप का नाम दिया जा सकता है । इनकी गजलों में विषयों की नवीनता और कुशादगी देखी जा सकती है । वह घिनौने, मकरूह कार्यो ं, क्रियाओं और किरदारों को भी सामने लाते हैं और समाज के असहायों के प्रति अपनी गहरी संवेदना दिखाते हैं ।

औरत सदा से बेचारी रही है, बेचारी बना दी गई है या वह बेचारी बन गई है, जहाँ शायर अमरेन्द्र औरत की मजबूर जिन्दगी पर शेर कहते हैं,

उतनी तो कभी थी नहीं सीता या द्रोपदी
जितनी कि अब निराश है औरत की जिन्दगी
00
भीड़ मरदों की चौराहे पर जुटी है इसलिए
एक नंगी लड़की कहते हैं दिखाई जायेगी

तो दूसरी ओर देश की राजनीतिक दुर्दशा पर कहते हैं,

इनके शासन में अभी और कुछ निकलना है
जान निकली है अगर तो भी वह कमतर निकला
00
इस निजामे हाल में अब क्या धरा है
मैं नहीं, हर कोई मुँह के बल गिरा है
00
जानते हैं कि यही घुट के हम मर जायेंगे
हर गली बन्द है शहरों की किधर जायेंगे
00
कट रहे हैं किस तरह से आदमी के चार दिन
चार दिन ये आदमी के खुदकुशी के चार दिन
00
आप कहते आ गया फिर रामराज्य
देखता हूँ आदमी को घर नहीं है

आज शुभ आदर्शों के बहाने बनाकर घृणित स्वार्थ की गोटियाँ लाल की जा रही हैं । देश-सेवा के नाम जातिवाद, सम्प्रदायवाद और विद्वेष की आग

भड़काई जा रही है और समाजवाद के नारे देकर जीवन के हरेक क्षेत्र में विषमता की खाई गहरी और चौड़ी करते जाने की चेष्टा की जा रही है । पीड़ित-शोषित जनता विद्रोह की मशाल हाथ में लेकर बाहर आना चाहती है, पर विध्वंस के उन्मादी तूफान में उन्हें कुछ भी सुरक्षित नहीं मिलता । आज हवा भारी-पर-भारी होती जा रही है । कोई भी अपने कुकृत्यों पर शर्मिन्दा नहीं है । यदि शासन में भ्रष्टाचार है, तो इसके लिए सीधे सत्ताधारी दल के नेता और मिनिष्टर पूरी तरह जिम्मेदार हैं । यदि मंत्री ईमानदार हैं, तो वे भ्रष्टाचार को रोक ही नहीं सकते, जबकि वे तो सारे प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार को रोकने में सक्षम हैं, ऐसा विश्वास किया जाता है । यदि वे भ्रष्टाचार और कदाचार को रोकने में आलसी हैं, तो इसका कारण यह हो सकता है कि वे सत्यनिष्ठ नहीं हैं अथवा इतने अकर्मण्य और प्रभावहीन हैं कि उनके अधीनस्थ कर्मचारी उनपर हावी हो जाते हैं । यही कारण है कि आज जनता का विश्वास डगमगाया हुआ है, इस शायर जनता की हालत और राजनेताओं पर जो कुछ लिखा है, वह एकदम साफ-सफाई,

आदमी का मोल इतना रह गया
एक दिन का जैसे कि अखबार है
00
इस जगह झोपड़ी रही होगी
आपका यह महल नहीं होगा
00
ये तो मुमकिन नहीं है तख्तनशीं खुशबख्तो
जिनपे बर्पा हो सितम उनमें बगावत न मिले
00
कुछ पूछिये जो मुल्क के बारे में कहते—'चुप'
यह मुल्क जैसे उनका कमाया हुआ लगता
00
वो रहनुमा होने का हैं दावा किये हुए
क्या खूब दिखाने को दिखावा किये हुए

ऐसे नेताओं को डॉ. अमरेन्द्र चुनौती भी देते नजर आते हैं,

किसका दामन नहीं रंगा है लहू से कहिये
बात बढ़ जायेगी जैसे हो छुपाया जाये
00

बात बहुमत की चलती है इस देश में
ये किराये पे लाखों हैं लाये हुए

और फिर ऐसे नेताओं को डॉ. अमरेन्द्र यूं आगाह करते हैं,

जब भी देखो हर कोई ही अनमना है
सोच लो तूफान की सम्भावना है

और डॉ. अमरेन्द्र उनका अनजाम भी बता देते हैं,

आपका भी कत्ल होगा मंच पर पढ़ते हुए
और फिर हर चौक पर मूर्ति बनाई जायेगी

यहाँ डॉ. अमरेन्द्र ने थोड़ी रियायत कर दी, वरना अब चौक पर मूर्ति लगाते लोगों की भावनाएं बदल चुकी हैं, क्योंकि इन नेताओं की शह पाकर आज हर तरफ आतंकवाद की राजनीति उभर कर सामने आ चुकी है, यह एक आपराधिक समस्या बन चुकी है । आर्थिक सहयोग और आग्नेयास्त्र आदि की आपूर्ति पाकर अपराधी-संगठन घोर हिंसा-अपराध की नीति अपनाते हैं और जनसाधारण में भय और असुरक्षा की भावना पैदा करते हैं । आतंकवाद के खूनी पंजे से आज राजनीतिज्ञ भी परेशान हैं और आम जनता भी खौफजदा है । अपहरण, आगजनी, हत्या और बम विस्फोट आदि इनके मुख्य तत्व हैं । इस विनाशकारी रूप को बनाने-संवारने में राजनीतिक दल, सरकार और पुलिस, सभी के हाथ हैं । डॉ. अमरेन्द्र ने अपनी गजलों में इस तल्ख सच्चाई को बड़े ही फकीराना अन्दाज में व्यक्त किया है,

पूछिये कुछ भी तो कुछ कहते नहीं
मुल्क का हर शख्स इतना ही डरा है
00
आओ बन जाएं हम सभी कातिल
कातिलों की बड़ी हिफाजत है
00
पहले तो मेरे जिस्म को बम से उड़ा दिया
फिर कातिलों ने शोक में सर को झुका दिया

ऐसे हालात की वजह से ही हमारे समाज में आज साम्प्रदायिक दंगे होते हैं । राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने अहिंसा और हिन्दू-मुस्लिम एकता के सिद्धांत पर स्वतंत्रता-संग्राम छेड़ा था, इस पवित्र उद्‌देश्य के लिए ही उन्होंने अपने जीवन का उत्सर्ग भी कर दिया, लेकिन आज राष्ट्रीय एकता, लोकतांत्रिक मूल्यों और धर्मनिरपेक्षता पर होने वाले हर आक्रमण के विरूद्ध संघर्ष केवल कागजी तौर पर

होता है । कट्टरवादी ताकतें आज लोकतंत्र, न्यायपालिका, संविधान और मीडिया के साथ ही सामाजिक ताने-बाने को तोड़कर तानाशाही कायम करने पर आमादा हैं । रोज-रोज के डर, रोज-रोज की अशांति से डॉ. अमरेन्द्र उबे हुए हैं और इसका नक्शा इस तरह खींचते हैं,

कल पढ़ रहा था देखते ही गोली दाग दो
इक आदमी भी गर कहीं चलता दिखाई दे
00
इधर से गुजरा है कोई लिए हुए पत्थर
सभी के मन में समाया हुआ है डर अब तो
00
सब गुलेलों को लिए बैठे हैं छत पर ताक में
ये बना न लें कबूतर को निशाना एक दिन
00
गुलों को देखना सबको सहम कर
कोई तूफान गुजरा है इधर से

इस स्थितियों के पीछे जात-पात की राजनीति भी है । आज सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक क्षेत्र में जातिवाद एक कोढ़ की तरह फैल गया है । डॉ. अमरेन्द्र ने अपनी गजलों में इस जलते हुए मसले पर भी तवज्जुह की है । जातिगत संस्कार और आचार-विचार को मानवता से जोड़े रखने की बात कही है, लेकिन उनके कहने का अन्दाज जुदागाना है,

उनके बक्से में सोना नहीं इनमें तो
वे कई जात के सांप पाले हुए हैं
00
शख्स को पाया न जिसकी थी तलाश
लोग आए जात से बेजात भर
00
वो आए जो सत्ता में तो सबको लड़ा दिया
फिर साथ सबके देखे तमाशा किए हुए

आज संसद की यह दुर्दशा है कि,

हर दिन का ये हंगामा ये गाली-गलौज भी
संसद है या कि बनिये की सब्जी दुकान है
00

यह न समझें सही लोग संसद में हैं
कुछ किराये के हैं कुछ उछाले हुए हैं

और जब ऐसी फिजा हो तो देश की सूरते-हाल यूं नजर आती है,

जब भी देखा है अपना मुल्क ये नजर भरके
कोई गरीब का गिरता लगा है घर अब तो

मुल्क बेतरह कंगाल हो चुका है,

चल रही रूसो अमेरिका की दवा
मुल्क मेरा बेतरह बीमार है

साथ की इज्जत-आबरू खतरे में हर वक्त नजर आती है,

सफर में तीर्थ का ही क्यों न हो जो भी चला होगा
हमें मालूम है हर एक ने हर को छला होगा
00
दुःशासन तैयार
लाज बचानी है

लूट, मार, कत्ल और जुल्म का एक सिलसिला है, जिसका सामना हर किसी को करना पड़ता रहा है,

सोचें नहीं कि हो रहा है आपके ही साथ
ये सिलसिला-ए-जुल्म है अब हर किसी के साथ

जुल्म करनेवाले की तरफ से खौफ और हरास फैलाया और पैदा किया जाता है और जुबान पर पाबन्दी लगाई जाती है, ताकि वे मनमानी करते रहें,

तेरे गुनाहों का चर्चा उठानेवाले को
सुना है हमने ये, दुनिया से उठा देते हो
00
कोई न चर्चा करे आपकी मरजी के खिलाफ
गजब का है ये इन्तजाम जो किये बैठे हैं

इस सूरते-हाल को और बेहाल माहौल को देखकर डॉ. अमरेन्द्र यहाँ तक सोचने पर मजबूर हो जाते हैं कि,

तुम्हारे मुल्क की आबो हवा न रास आयी
जी तो करता है नया मुल्क ही ला देने को

देश की अस्त-व्यस्त हालत से फायदा उठाकर आज पड़ोसी मुल्क अपने मुल्क पर कब्जा जमाने की कोशिशें कर रहा है, और हम सिर्फ दर्शक बने हुये हैं,

अपने वतन का हिस्सा किसी ने हड़प लिया
झंडा जगह-जगह प उड़ाते ही रहे तुम

इस बेहिसी के कारण ही रामराज्य का दारुल-अमान जाता रहा है,

आप कहते आ गया फिर रामराज्य
देखता हूं आदमी को घर नहीं है

इस बेघरी का एहसास डॉ. अमरेन्द्र को बहुत ज्यादा है । इसकी वजह ये है कि वह जिस प्रदेश में रहते हैं, जिस शहर और गांव तक उनकी रसाई है, वहाँ भुखमरी, गरीबी, खाने की मोहताजी और घर की परेशानी व्याप्त है। जहाँ जीवन-स्तर शून्य हो, वहाँ डॉ. अमरेन्द्र जैसे हस्सास, भावुक और अनुभूतिशील कवि क्या कभी कलम बन्द कर सकते हैं,

कौन रक्खेगा मुझे घर में और कितने दिन
मुझको बेघर ही बना रहना है घर होने तक
00
यहां के लोग सब पेड़ों के नीचे रहते हैं
मुझे तलाश है इक घर की मगर कैसे कहूं

जब घर नहीं, जीने की दूसरी खुशियाँ न हो, तो आदमी का वजूद रेजा-रेजा हो जाता है, खंड-खंड हो जाता है,

आज का यह आदमी कुछ भी नहीं
एक शीशा है जो चकनाचूर है

लेकिन डॉ. अमरेन्द्र मायूस और नाउम्मीद भी नहीं हैं । उम्मीद का दामन थामे रखने, देश और माहौल के इस घुटन से बाहर निकलने की तलकीन करते हैं,

खिड़कियों को खोल कर भी देखिये तो
यह उमस अन्दर ही है बाहर नहीं है
एक दिन यह भी फुलेगी अनछई
मिट्टी है परती पड़ी बंजर नहीं है

बीसवीं सदी खत्म हो चुकी है और इक्कीसवीं सदी का बिगुल बज गया है, ऐसे में डॉ. अमरेन्द्र आशा के दीप भी जलाते हैं ।

समाज में शुरू से ही लोग दो तबका, वर्ग या श्रेणी में बँटे रहे हैं । एक अमीरों या दौलतमंदों का तबका रहा है और दूसरा गरीबों का । डॉ. अमरेन्द्र ने अमीरी और गरीबी के कई पहलुओं पर अपनी गजलों के माध्यम से रौशनी डाली है । हम जानते हैं कि व्यक्ति या कौम के इख्तियार में जिस हद तक कीमती चीजें

होती हैं, उसी के हिसाब से उनकी दौलत या गरीबी का भी निश्चय होता है । रुपये की कद्र या आदर इसलिए किया जाता है कि वह उस सामर्थ्य या अधिकार की अलामत या लक्षण है, जो एक इंसान का दूसरे इंसान पर प्रधानता दिखलाता है । हालांकि होना यह चाहिए कि समाज में न तो हद से ज्यादा अमीर लोग हों और न हद से अधिक गरीब हों; लेकिन इसे दूर करना वर्तमान आर्थिक नीति के कारण मुश्किल ही है । आज समाज का ढांचा कुछ ऐसा बन चुका है कि अमीरी और गरीबी का फर्क बरकरार रहेगा ही, ऐसा ही लगता है,

कोई तो फाकों पे दिन—रात गुजर करता है
और इक वह भी है जो अन्न का घर करता है
00
मेरी यह तकदीर कि इक भी जहां न पा सका
आपका तो देखिए दोनों जहां बनता गया
00
कोई तो चाँद पर रहने की जगह खोज रहे
किसी को मुल्क में रहने को भी मकां न हुआ
00
हम ये कहते हैं हमको इक घर चाहिए
जबकि उनको तो पूरा शहर चाहिए

इसलिए गरीब यह भी सोचने पर मजबूर है कि,

लगता होगा और किसी को फूलों वाला जीवन है
मुझको तो लगता है साथी एक तमाशा जीवन है
00
ये जिन्दगी अब हो गई इस तरह बेसूरत
कागज प जैसे हर्फ मिटाया हुआ लगता
00
रुकने का नहीं नाम न मंजिल का कुछ पता
घबराये जा रहे हैं मुसलसल सफर से हम

जिन्दगी से जूझने के बावजूद एक गरीब यह फैसला लेता है कि,

मौत ही अपने सुलझा लेगी कौन करे मेहनत साथी
गांठ लगे हैं जगह-जगह पर बहुत ही उलझा जीवन है

डॉ. अमरेन्द्र की गजलों का एक महत्वपूर्ण और गंभीर पहलू जिन्दगी और मौत है । हम जिस युग में जी रहे हैं वहाँ जिन्दगी और मौत हर घड़ी

आमने-सामने है । दोनों ही सरहदें मिली हुई हैं, और कोई भी एक कदम फैसलाकुन होता है, या हो सकता है ।

जमी हुई सीलन वाले इस ठंडे संसार में रहते चले आ रहे लोगों के जीवन में रचने-बिगड़ने की प्रक्रिया व्यक्त करने के साथ-साथ डॉ. अमरेन्द्र जिन्दगी और मौत को कई रूप में ही नहीं देखते हैं, बल्कि गजल के फन में बुलन्दियों पर भी नजर आते हैं,

किसी तरह न बचे जिन्दगी की साजिश से
हमें गुरूर था हम मौत को छल आए थे
00
हमने इतना ही कहा था कजा से मिलने पर
जिन्दगी देखने को आँख अब तरसती है
00
जिन्दगी से था परेशां तो खुशी मौत ने दी
यह तो है इसका हुनर, उसका हुनर कैसे कहूँ
00
मौत बढ़कर नहीं है जिन्दगी से ऐसे भी
तुम कहोगे तो इसे आजमा के चल देगें
00
जिन्दगी छोड़ दे मौत घबरा के हां
मौत के पीछे ऐसा लगा चाहिए
00
देखना है जिन्दगी क्या सोचती है
मौत का किस्सा बहुत महसूर है
00
जिन्दगी का हौसला कुछ कम नहीं
मौत कुछ ऐसी नहीं दुश्वार है
00
लोग बहुत तारीफ किए थे जीवन और मृत्यु की ही
मृत्यु पराई भी इन दिनों ओर पराया जीवन है

समय के रास्ते बड़े लम्बे होते हैं । दिन-रात, महिनों में बदलते, महीने, वर्षो ं की लपेट में आते और फिर अतीत की धुंध में गुम हो जाते हैं । अतीत का नाम है–चंद यादों की यादें, कुछ यादें तो जिन्दगी के उतार चढ़ाव का साथ

देतीं और सदा कायम रहती हैं । डॉ. अमरेन्द्र ने याद को केवल याद की तरह नहीं बरता है, बल्कि अपनी व्यक्तिगत आवाज की थरथराहट से जिन्दगी के रंग की जोत भी जगाई है ओर समाजी वातावरण में नई जिन्दगी के चिन्ह दिखाए हैं,

दुनिया चाहेगी तो आएगी मेरे पीछे से
छोड़ जायेंगे निशां पा के जिधर जायेंगे
00
आदमी चलता है यारो इसलिए
वह मरे तो उसके अफसाने चले

यूं तो गजल शब्दों के ताने-बाने का एक सामंजस्य नजर आती है पर शायरी की विधा में गजल, मेरी नजर से, 'बदन-चोर' और 'धोखेबाज' विधा है । स्तरीय गजल कहना उसी वक्त संभव है, जब गजलकार के वाक्‌जाल में रचाव हो, उसे शब्दों के आसन-विसर्जन का सही अन्दाजा हो । इसमें स्वर का रागमय संयोजन और अनुभव, अनुभूति, चेतना के आभास की एक खास दशा हो । फिर गजल तप, तपस्या और परिश्रम चाहती है । आज ऐसे बहुत कम गजलकार हैं जो फन, कला-शिल्प को बरतने के तकाजा को पूरा करने की कोशिश करते हों । शौकिया और फैशन के तौर पर गजल कहनेवालों की संख्या अधिक है । ऐसे में डॉ. अमरेन्द्र पर नजर टिकती है, जो फन या कला को जिन्दा रखने और गजल को प्रेमिका और महबूब का दर्जा-पद-मान देने में जी-जान से लगे हुए हैं । यही कारण है कि इनकी गजलों का केनवाश बड़ा है । मनुष्य और जीवन के प्रति आस्था कोई दकियानूसी (पुरातन) मूल्य नहीं । अन्याय, अत्याचार और निर्धनता के विरूद्ध आवाज उठाना भी दकियानूसी मनोवृत्ति नहीं है । डॉ. अमरेन्द्र अपना अस्तित्व रखते हैं, इसलिये इस सत्य को समझते हैं,

हमको तो उजाले ने यहां हर घड़ी लूटा
बेकार ही झगड़े हुये थे तारीकी के साथ
00
पीछे-पीछे लगी हुई है पुलिस मृत्यु की, राहों मे
उम्र-कैद की सजा भुगतता जेल से भागा जीवन है

डॉ. अमरेन्द्र के आत्मसंघर्ष में हिन्दी गजल के समृद्ध अतीत और वर्तमान की अनुगूंजे छिपी हुई हैं, जिसको समझने के लिए संवेदना के नये इलाके में प्रवेश करना होता है । संवेदना के ये इलाके कई तरह के हैं,

आज के मनुष्य की वास्तविकता,

वो चाहता है जैसा ही लाता है काम में
अब आदमी उसके लिये सामान लगे है

मानवता और मानव-जाति की दुर्दशा,

लगा है बोर्ड कि पिल्ले का हाल नाजुक है
यहाँ पे आदमी के खून लिए जाते हैं

आज का आदमी निर्लज्ज और असंगत हो चुका है,

क्या हुआ अन्दर का कागज दीमकों ने खा लिया
जिल्द ऊपर से बहुत सुन्दर लगाई जायगी

आज का आदमी ईमान, आस्था, विश्वास और श्रद्धा को नीलाम कर चुका है,

घर को नीलाम जो करते हो तो कम करते हो
लोग ईमान को नीलाम किये बैठे हैं

आदमी की इतनी गिरावट की वजह डॉ. अमरेन्द्र यह ब्यान करते हैं,

लाइन्तहा तरक्की मेरी क्या न बना मैं
इक आदमी न बन सका बस आदमी के साथ

जीवित सच यह भी है कि आज शहर की हालत गांव से बदतर हो चुकी है,

बात ऐसी नहीं इक-दो घर देखते हैं
खोया-खोया-सा सारा शहर देखते हैं
00
गांव से चलकर शहर तक आये तो ऐसा लगा
मौत से बेहतर नहीं है जिन्दगी के चार दिन

आज दिल से बढकर दौलत का महत्व हो चुका है,

अब तो दिल से भी बड़ी चीज है दौलत माना
दिल क्या दौलत है जिसे तुमपे लुटा भी न सकूं

'दिल' और 'इश्क' के बिना गजल की परिभाषा पूरी नहीं होती है । इस मामले में डॉ. अमरेन्द्र की गजलें प्रमाणित और अभिज्ञ हैं,

कोई तरीका ढूंढिये तसल्ली का
ये दिल मेरा जैसे हो संभलता दिखाई दे
आप अपनापन दिखाकर दिल मेरा न जीतिये
मैं अभी भूला नहीं हूं बेरूखी के चार दिन
00

किस-किस को अपने इश्क में आबाद करोगी
मेरी तरह दो-चार को बर्बाद करोगी
00
मैं कई रात से सोया नहीं हूं उल्फत में
उनको इस हाल पे हैरत है और कुछ भी नहीं
00
इश्क का इन्तहा है आशिकों का लुट जाना
इश्क जीवन से बगावत है और कुछ भी नहीं

'इश्क' और दिल के साथ 'दर्द' का भी सम्बन्ध है । हिन्दी गजल में दर्द का भी महत्व रहा है । डॉ. अमरेन्द्र ने भी दर्द को सिद्दत से महसूस किया है, और उसको लज्जत से आशना होने के बाद अपने युग के उठते हुए तूफान में भी शामिल किया है,

आपके इस दर्द ने तो वह किया है क्या कहें
दर्द सहने का मेरा वह सिलसिला जाता रहा
00
मेरी जरूरत पर फकत बातें बनाकर रह गये
दर्द अपना जो कहा तो मुस्कराकर रह गये

डॉ. अमरेन्द्र की गजलों को पढ़कर ये अन्दाजा लगाया जा सकता है कि उनके अन्दर एक छटपटाहट है—यह छटपटाहट स्वाभाविक है, क्योंकि वह जिस माहौल में जी रहे हैं, वहां सबकुछ ठीक-ठाक नहीं है । यह विडम्बना ही है कि आज आदमी एक तरफ चाँद और मंगल की यात्राएं कर रहा है, अंटार्कटिका हिम-समुद्र में अपना शिविर डालने लगा है, और अपने बुद्धि-कौशल से सहस्त्रों मील की दूरी को मुट्ठियों और मिन्टों में समेट लिया है; फिर भी दूसरी तरफ भूख का विकराल काल है । हत्या, नरसंहार, दंगा, बलात्कार, दमन, भ्रष्टाचार, जातिवाद, अराजकता और गुण्डागर्दी है । ऐसे में डॉ. अमरेन्द्र जैसे कवि के विचार और सृजन का भविष्य असुरक्षित हैं,

शायद ही कोई होगा जो मुझसे खफा न हो
नन्ही-सी मेरी जान के पीछे लगा न हो
00
सामने फैला हुआ काला धुआं है
वह बताते हैं नया यह आसमां है
00

रोशनी सूरज की आये तो किधर से
इस जगह जंगल बहुत ज्यादा घना है
00
पूछिये कुछ भी तो कुछ कहता नहीं है
मुल्क का हर शख़्स इतना ही डरा है

डॉ. अमरेन्द्र को एक बड़ी खूबी यह है कि इन्होंने अलग-अलग विषयों पर कई-कई गजले कही हैं, और रचनात्मक तादात्म्य स्थापित किए हैं । अपनी पूरी गजल-प्रक्रिया में वस्तु की तलाश एवं रूप के निर्माण पर उनका ध्यान रहा है, और अपार संभावनाओं को वह सामने रखते हैं । सच तो यह है कि उनकी गजलें संक्रमणकालीन गजलें हैं जो उनके कद, आकार, काया को ऊँचाई तक ले जाती हैं ।

डॉ. अमरेन्द्र का मुशाहदा या अवलोकन इतना तेज है कि वह सामने की बातों और चीजों की गहराई तक फौरन पहुंच जाते हैं । जीवन के प्रति उनका नजरिया कहीं भी सकरा नहीं है । वह जीवन की तमाम घटनाओं पर नजर रखते हैं और गजल में चित्रित करते हैं, अपनी सरलता और सहजता के साथ,

ताली बजा के तुमने बहुत देर रख लिया
उकता गई है भीड़ अब मजमा उठाइये
00
आज क्या-क्या सोचकर 'रावन' चला था महल से
सामने 'बालो' जो देखा हौसला जाता रहा

शिल्प और कथ्य के संयोग से डॉ. अमरेन्द्र गजल को जो पैरहन अता करते हैं, उससे पूनम के चाँद जैसी दिलकशी पैदा हो जाती है । हिन्दी गजल के फन को एक नये अन्दाज से लफ़्जयात का आईना दिखाने के लिए ये नपे मुहावरों से अनुपमता, इनफिरादीयत और अद्वितीयता पैदा करते हैं, और ऐसा करने में उन्हें महारत हासिल है,

चलती नहीं है दोस्ती तो दुश्मनी कर लो
कुछ भी न निभाते हो तुम क्यों दोस्ती के साथ
00
यह इमारत टिकेगी किस तरह से बोलो यहाँ
पाँव धँस जाते हैं मिट्टी में जिधर रखते हैं
00

जिसके चेहरे को कर दिया है किसी ने घायल
हम अपनी जेब में ऐसा एक शहर रखते हैं
00
ये घने जंगल कई मोलों के फैले दूर तक
ये नहीं मानूंगा इसमें एक भी अजगर न हो
00
हाय अंधों से पूछा करें आप क्या
वे इधर देखते या उधर देखते हैं
00
जिसने लगाई आग है पंजाब के अन्दर
माथे पे दाग-दाग है पंजाब के अन्दर
00
ये मुल्क क्यों लगता है बहुत फीका-फीका-सा
यह इसलिए कि फीका है पंजाब हमारा

डॉ. अमरेन्द्र की गजलों में काव्यात्मक विराटता है और शब्द अपनी पूरी समाजशास्त्रीय विशेषताओं के रूप धारण करते हैं ।

अपनी गजलों में, कला के रूप में कहीं-कहीं ये मिथक की शैली को भी उपयोग में लाते हैं । एक तो उस शैली की ताकत, दूसरे डॉ0 अमरेन्द्र के कहने की ताकत, दोनों मिलकर ऐसे अर्थ और सौन्दर्य की सृष्टि करती हैं, जो पूरी तरह विभोर कर देती हैं,

महिषासुर है मस्त
क्रुद्ध भवानी है
00
आज क्या-क्या सोचकर 'रावन' चला था महल से
सामने 'बाली' जो देखा हौसला जाता रहा

इनकी गजलों में परवाजे तखय्युल का एक उदाहरण देखिये,

मेरे घर के पिछवाड़े से ऊपर उठ के आए चाँद
माथे पर टिकुली-सा चमचम कितना आज सुहाए चाँद

डॉ. अमरेन्द्र अपनी गजलों में गहराई तक डूबकर अपने आस-पास की दुनिया को देखते हैं, और वही माटिफ चुनते हैं जो उनसे व्यक्तिगत रूप से मुखातिब है, और जिनमें कोई विशिष्ट अन्दरूनी आवेश रहता है । यही कारण है कि डॉ. अमरेन्द्र की गजलों का असर भी जमाने पर ज्यादा है, बकौल शायर,

तेवर मेरी गजल का किसी और में नहीं
चर्चा ये इसी बात का सारे शहर में है ।

(लेखक की आलोचना कृति 'डॉ. अमरेन्द्र की गजलों का आलोचनात्मक अध्यन' से : सम्पादक)

सम्पर्क : प्राध्यापक, स्नातकोत्तर उर्दू विभाग
ति. मां. भा. विश्वविद्यालय, भागलपुर

अमरेन्द्र की गजलें कुरुक्षेत्र रचती हैं

—अनिरुद्ध सिन्हा

आज का युग उग्र वैचारिक संघर्ष का युग है, या वैचारिक मैनीपुलेशन का, या क्लासिक विवेचन का ? इस तरह के सारे प्रश्न आपस में गुँथकर एकाकार हो गये हैं । समकालीन आलोचकों ने इन्हें और भी उलझा दिया है । जब जैसा हुआ, अपना फतबा जारी कर दिया । उनके इस ढुल-मुल आचरण से वैचारिक समस्याओं के सारे प्रश्न समाधान बिन्दु से काफी दूर होते चले गए । इसका मूल कारण है—सृजन की स्वतः स्फुर्त प्रकृति को भौतिकवादी ढंग से समझना । साहित्य के सचेतन आत्मसातकरण के महत्व को दोयम दर्जे का मान लेना । आलोचकों के इस महानगरीय दृष्टिकोण से हिन्दी आलोचना की कितनी क्षति हुई है, फिलहाल इसका समग्र आकलन करना मुश्किल है । शायद यही कारण है कि हिन्दी गजल समकालीन आलोचकों से कोई अपेक्षा नहीं रखती । समकालीन हिन्दी कविता की दुर्दशा का जिम्मेदार एक हद तक आलोचक-समुदाय है ।

बीसवीं सदी के सातवें दशक से हिन्दी गजल ने दुष्यन्त कुमार की बहुअर्थी, बहुआयामी और विविधवर्णी गजलों को गाढ़े रंग में रंग कर एक सार्थक और मजबूत जमीन तैयार की है, जिसपर चलते हुए समकालीन गजलकारों ने अन्तहीन विस्तार दिया । अभिव्यक्ति एवं बिम्ब-विधान के मामले में आज की हिन्दी गजलों ने जिस सुर्खरू तेवर और इन्कलाबी मिजाज को अपनाया है, उसके सामने दुष्यन्त कुमार की गजलों की कशिश भी जाती रहती है । यह परिस्थियों के परिवर्तनगामी सोच का परिणाम है । दुष्यन्त कुमार की गजलों के आत्मपरक आधार का समर्थन किया जा सकता है, परन्तु सामाजिक आधार का हू-ब-हू समर्थन करना कठिन है । वर्तमान मान्यता, पुरानी सारी मान्यताओं को तोड़कर सामने खड़ी है । पिछले लगभग एक दशक से उपभोक्तावाद, उदारवाद या जिसे ग्लोबलाइजेशन कहा जाता है, उसके विरोध का प्रपंच हर राजनीतिक दल कर रहा है, लेकिन अपनी निष्ठा में यह इतना सतही है कि एक बनावटी आन्दोलन से आगे नहीं जा पाया । वैचारिक संघर्ष राजनैतिक द्रोह में परिणत हो गया । राजनीति अपनी अभिव्यंजनात्मक क्षमताओं का संतुलन बनाये रखने में विफल है।

हिन्दी गजल के प्रखर गजलकार और अनेक विधाओं में कलम चलाने वाले बहुमुखी प्रतिभा के धनी कलमकार अमरेन्द्र की गजलों को देखें, जिनके

एक-एक अशआर में गर्म रोटी की सोंधी महक है । अगरबत्ती की तरह सुलगती भावनाएं हैं, जिनकी नूकीली रोशनी में जीवन की बुनियादी सच्चाइयाँ करवटें बदलती हुई हमसे बतियाती हैं और कहीं-कहीं आदमी को आदमी बनाने की ललक, उसके रास्ते से नूकीले पत्थरों को दूर करने की चाह, आशा को नए सूरज के साथ उगने का आश्वासन देने वाले शेर, जो सहज ही एकान्तपन में गड़ेरिये की बाँसुरी बन जाते हैं------फ्लाकिंग टुगेदर का स्पन्दन । उनके प्रत्येक शेर में सम्वेदनायुक्त सामाजिक सार प्रकट होता है, जिसकी धुन पर हमारी दिनचर्या थिरकती हुई नजर आती है । अमरेन्द्र के शेर का बयान है,

जो तुम्हारे जुल्म पर कुछ आज तक न कह सके
है उन्हीं मजलूम लोगों की जुबां मेरी गजल ।

00

कोई भी गम नहीं होता है सारी जिन्दगी भर का
अन्धेरे से न घबराओ, यही फिर चाँदनी देगा ।

00

सुना था चाँद पर दादी वहाँ तकली चलाती है
वहाँ पहुँचे भी तुम लेकिन यहाँ पत्थर उठा लाए ।

अमरेन्द्र के अशआरों में सामाजिक तत्व की मुख्य भूमिका को मान्यता है । अपरिभाषित या कलात्मक अमूर्तता से आच्छादित न होकर आम आदमी की जरूरतों और सरोकारों से भली-भांति चिन्हित हैं । गजल इनके लिए लफ्जों का जखीरा न होकर रौशनी के समुद्र में जलता हुआ कन्दिल है । जिन्दगी के वास्ते जिन्दगी का नूर लिए । कविता ही नहीं, गजल भी सहनशीलता, शील, शक्ति और सौन्दर्य के सांस्कृतिक मूल्यों को सहेजती है, साथ ही आम आदमी को अपने अधिकारों के प्रति आग्रहशील, सजग, सचेष्ट और सक्रिय भी बनाती है । और इस तरह जारी सामाजिक-सांस्कृतिक-राजनीतिक संघर्ष में आम आदमी का लफ्ज बनकर अपनी सार्थकता सुनिश्चित करती है, या कर सकने की सम्भावना से सम्पृक्त होती है । अमरेन्द्र की गजलों में अन्दर की घटनाओं के अनुवाद के पानी में चेहरों के इन्द्रधनुष का रंग, रौशनी की रंग-बिरंगी तितलियाँ, अम्न के फूलों की लाली और रास-रंग-राग के उत्स-स्वरूप और अन्तर्निहित सम्भावनाओं के तैरते-मुस्कराते स्वप्न मिलते हैं । गजल की महत्वपूर्ण प्रस्थापनाओं का इससे बेहतर प्रतिपादन क्या हो सकता है,

गर दुख नहीं है मेरे लहू के बहाव पर
ऐसे तो छिड़किए न नमक मेरे घाव पर ।

कैसे कहूँ कि पीठ पर उसकी न होंगे घाव
सेंका गया है हर कोई जबकि अलाव पर ।

अमरेन्द्र की गजलों में वैचारिक विवाद नहीं है और न ही बौद्धिक विश्लेषण का भारीपन है । उनके भीतर की सार्वभौमिकता उनकी गजलों में साफ-साफ देखी जा सकती है । वहाँ अमर्यादित विचारों का भौंडापन प्रदर्शन करने की विकलांग कोशिश भी नहीं है ।

समाज में स्नेह की शृंखला का अभाव, लोकतांत्रिक संस्थाओं का निष्प्रभावी और बेमानी होना और जहाँ हँसती-गाती जिन्दगी में दुःखों का पहाड़ टूट पड़ा है—लेकिन हजार जख्म शरीर पर उगने के बावजूद शायर का आत्मविश्वास बचा है, तभी तो वह अपनी बातों को लोगों के समक्ष सावधान मुद्रा में कहने में सफल होता है । दूसरे शायर अपनी दृष्टि से या अपनी स्थितियों से, अन्य की स्थितियों को जोड़कर उन्हें परिभाषित करता है । समकालीन जीवन के कार्यकलाप की अभिव्यक्तियों की सम्पूर्णता को उजागर और अभिपुष्ट करने के क्रम में भी अमरेन्द्र के भीतर आस्था का एक निरन्तर अकम्प स्वर विद्यमान रहता है । खीज और झुंझलाहट है, तो विद्रोह का विस्फुटन भी है—यह आज के विषम समय में आदमी के रूप में जिन्दा रहने और पूरे दायित्व के साथ सार्थक सृजन के निर्वाह के लिए जरूरी है ।

गजल छन्द की प्रेयसी होती है और कथ्य उसका शृंगार । अमरेन्द्र गजल की इन दोनों शर्तों को अच्छी तरह से जानते हैं । किसी भी गजल में शब्दों के उतार-चढ़ाव में इन्होंने छन्दों के आत्मसमर्पण को बचाए रखा है, जो इनकी गजलगोई का सबसे खूबसूरत पक्ष है ।

सम्पर्क : गुलजार पोखर, मुंगेर (बिहार) 8112001

गजल पाठ से पहले का निवेदन

संस्कृत के गण वाले छन्दानुशासन से मुक्त और अक्षरों की संख्या की प्रधानता से युक्त वैदिक छन्दों की व्यवस्था में भी एक लचीलापन है और वह लचीलापन है-निश्चित अक्षरों के चरणों में कहीं-कहीं अक्षर या अक्षरों को बढ़ने घटने पर भी उनके लयात्मक पाठ की सुव्यवस्था।

जिस चरण में एक अक्षर की न्यूनता होती है, वह 'निचत छन्द' है और एक अक्षर की अधिकता वाला चरण 'भूरिक छन्दश। इसी तरह दो अक्षरों की कमी वाले चरण शविराटश और दो की अधिकता वाले को 'स्वराट' कहा गया है। फिर वैदिक छन्दों के पिंगल शास्त्र में ही अक्षरों की कमी-अधिकता होने पर अक्षर-पूर्ति के लिए भी व्यवस्था दी गई है जिसका परिभाषिक शब्द यहाँ 'व्यूहन' है। इसी व्यूहन के आधार पर 'वरेण्य' को 'परेणिअं', 'सोम्यं' के 'सोमिअं', त्वं को 'तुअम' और 'इन्द्र' को 'इन्दर' पढ़ने की व्यवस्था है। छन्द-रचना में, मैं वैदिक पिंगल-व्यवस्था से प्रभावित रहा हूं।

संग्रह की ग़ज़लों के छन्द संस्कृत के पिंगल-शास्त्र के साथ हैं, जिससे फारसी छन्द-शास्त्र की बड़ी निकटता है।

हिन्दी का कवि होने के कारण ही मैंने अरबी-फारसी के शब्दों और व्याकरणों से जी नहीं चुराया है, मगर मेरी कोशिश यही रही कि विदेशी शब्द उसी शक्ल में आएं, जिस रूप में वे हिन्दी में प्रचलित हैं। अगर गजल हिन्दुस्तानी काव्य-शैली का विकास है, तो उसका ढांचा भी हिन्दुस्तानी ही रहे।

—अमरेन्द्र

सम्पर्क :
लाल खां दरगाह लेन,
सराय भागलपुर 812002

।। 1 ।।

आबाद जहाँ पर थीं सितारों की बस्तियाँ
आबाद वहीं पर हैं शरारों की बस्तियाँ

ओठों को चलो सीते, जुबां-आँखों को मूँदे
होती है शुरू याँ से जनाबों की बस्तियाँ

सब जा रहे हैं पाँवों से राहों को टटोले
इसको ही कहते तुम थे, चिरागों की बस्तियाँ

हर शख्स गुनाहों में मुलब्बस मुझे मिला
किस शहर में न अब हैं गुनाहों की बस्तियाँ

इल्मो हुनर के वास्ते अपना दिमाग देख
क्या ढूँढते फिरते हो किताबों की बस्तियाँ

तिनकों से सजा घर है उस पे यह भी मुसीबत
ये घर वहीं जहाँ पे हवाओं की बस्तियाँ

कैसा है मूर्ख हाथ में आगिन लिए चलता
जब जानता है ये हैं पटाखों की बस्तियाँ ।

।। 2 ।।

वह गरीब कैसे हो सकता कैसे कहते—बेघर है
धरती—जिसका पलंग-बिछौना, महल मिला यह अंबर है

देखेंगे, बस्ती वाले सब जलने से कैसे बचते
आग लगी है जंगल-जंगल कोसों दूर समन्दर है

कितनी बार कहा यह तुमसे, बात-बात पर बतलाया
मानो तो सब देव यहाँ पर, ना मानो तो पत्थर है

समय आ गया—घिस कर एड़ी पानी वहाँ बहाने का
जहाँ-जहाँ परती-पराँट है, जहाँ-जहाँ भी बंजर है

अन्धकार को मुँह की खानी पड़ सकती है अब से ही
सभी जगह बारात की रातें और दीवाली घर-घर है

जिसकी आँखों में जलती हो आग—जलाने वाली ही
पानी नहीं बुझाने का हो, वह शायर क्या शायर है

मिटने वाली नहीं कथा है—राम-जानकी, रावण की
जब तक भारत-लंका है यह और बीच में सागर है

आँसू छलके नहीं मिले करुणा के जहाँ-जहाँ देखा
देखा जगह-जगह पर मस्जिद-गिरिजाघर और मंदिर है

जो वह दोस्त नहीं है तो वह साफ-साफ है दुश्मन ही
तुम तो कुछ भी लगे न मुझको, तुमसे तो वह बेहतर है

जिसके आगे-पीछे भूतों-प्रेतों की टोली-जमघट
जिसका भाँग-धतूरा भोजन, बना हुआ वह शंकर है

बाहर पूज रहे हो किसको, किसको तुम यह छलते हो
चित्रगुप्त तो चित्तगुप्त है, वह तो अन्दर-अन्दर है

अब क्या इच्छाओं की लहरें नाव मेरी भटकायेंगी
रेतों पर अपने जीवन का डाल दिया जब लंगर है

चाहे जितना घुमा-घुमा कर टेढ़ा-मेढ़ा लिख लो तुम
पढ़नेवाला जान ही लेगा, लिखा ये किसका अक्षर है

मैंने ओढ़ा और बिछाया है—सब ऋतु में इसको
कैसे कहते मानुस का तन—फटी, पुरानी चादर है

पहले बसा, बसाना सीखो—सुन्दरता को आँखों में
फिर देखोगे दुनिया की हर चीज निराली सुन्दर है

तुम भी अपने सारे सुख की सेनाओं को खड़ा करो
पीछे-पीछे लगा हुआ जो सारे दुखों का लश्कर है

धन-दौलत है, महल-अटारी, जंगल-पर्वत सब तेरे
लेकिन अमरेन्दर के जैसा हासिल भी क्या आदर है ।

।। 3 ।।

मेरे खिलाफ में उठती हुई हवा देखो
उसी के बीच सफीना मेरा चला देखो

किताबें पढ़ के उसे ढूंढना कठिन होगा
लिखा जो उसने मेरे दिल पे है पता देखो

वही जो मेरे लिए सबसे दुश्मनी था लिए
समय जो आया तो दुश्मन से जा मिला देखो

मैं जा रहा हूँ मगर चाँद ले के लौटूँगा
अगर यकीन है तुमको तो आसरा देखो

मैं ढूंढता था कहीं आदमी का घर छोटा
वह मुझसे कहता था—राजा का ये किला देखो

जो घर ये लगने लगा है तुम्हें भुताहा-सा
जहां में घर की कमी क्या है—दूसरा देखो

जरूर दोस्ती है इसकी वायु-पानी झोंके से
ये शजर आंधी में कैसे तो है खड़ा देखो

यहाँ उमीद क्या करते हो, किसी की अमरेन्द्र
तू अपनी राह चलो, अपना रास्ता देखो ।

|| 4 ||

सफर में ऐसे भी मंजर आए
दूर तक लोग थे न घर आए

मुझको लगता है—मैं ही जाता हूँ
तन्हा-सा जब कोई नजर आए

जिन्दगी हो जहाँ, बुला लाओ
मेरी तो मौत की खबर आए

हम मना जिसके लिए करते रहे
क्या किया तुमने वो ही कर आए

उनको चेहरा कहाँ दिखाई दे
जिनकी आँखों में बस कमर आए

ऐसी क्या दुश्मनी थी मंजिल से
किसलिए राह में बिखर आए

तुम्हें तो जिन्दगी से नफरत थी
आज अमरेन्द्र तू किधर आए ।

।। 5 ।।

हमारी बात का तुम उम्र भर कहा रखना
निभे न दोस्ती तो दुश्मनी को क्या करना

भले ही पीठ की आँखों को तुम खुला रखना
हजार बातें वो दुख की मगर भुला रखना

मेरी तो इतनी-सी कोशिश है—इब्तिदा रखना
उसी जमीन पे तुमको है—इन्तिहा रखना

अंधेरा उम्र के जंगल का आनेवाला है
हसीन यादों के दीये को अब जला रखना

मिलो जरूर मगर इसका भी ख्याल रहे
ये दिल तो दिल ही है, थोड़ा-सा फासला रखना

अगर हो आँखों पे गिरती हुई कोई बिजली
कठिन है—ख्वाबों में अपने को मुब्तिला रखना

ये शहर है, तुम्हारा गाँव नहीं है अमरेन्द्र
दिलों की बातों को मत ऐसे जा-ब-जा रखना

।। 6 ।।

हरेक बार मुझे ऐसा कुछ लगा जैसे
किसी ने कानों में चुपके से कुछ कहा जैसे

तुम्हारी याद क्या आई है इस अकेले में
सिरहाने मोगरे का फूल हो खिला जैसे

दुखों का आना-जाना ऐसे लगा है अब तो
ये जिन्दगी हो मेरी—उनका रास्ता जैसे

मैं बदहवास-सा बेचैन फिरा करता हूँ,
सभी के एक-से चेहरे हैं और पता जैसे

किसी की यादें अभी मन में आ रहीं ऐसे
रवां हो दूर की घाटी में काफिला जैसे

सभी की बातें खतम होती हैं मुझी पर आ
मैं हो गया हूँ—जहां भर का माजरा जैसे

सभी ने हाथों में पत्थर उठा लिए फौरन
जब भी अमरेन्द्र को ठोकर लगी, गिरा जैसे ।

|| 7 ||

मिलने-जुलने का अभी और सिलसिला रखना
ये कायदा है मुहब्बत का, कायदा रखना

तुमसे छोड़ी नहीं जाती है जब—जफा रखना
मैं कैसे छोड़ता फिर अपनी ही वफा रखना

कितने गहरे हो—अभी इतना आजमाया करो
तुम्हारे वश में नहीं मुझको आजमा रखना

कभी तुम्हारा ही मन हो कि मुझसे आके मिलो
इसी से कहता हूँ—मिलने का रास्ता रखना

तुझे तो भीड़ में चलने की नहीं आदत है
तू अपनी राह सभी से जुदा-जुदा रखना

जहां में जिस्म का अब कारोबार होता है
बहुत बुरा हुआ—दिल का मुतालबा रखना

तुम्हें भुला के मेरे दोस्त मैं भी भूल गया
हसीन शायरी का हुस्नो-जायका रखना

वो हाल जिस्म के खूं होने का सुनाएगा
तुम भी अमरेन्द्र अपने दिल का वाकया रखना ।

॥ 8 ॥

वो शख्स दिख गया है फिर से आया गाँवों में
बड़ा ही खौफ है छाया हुआ हवाओं में

ये सुब्ह तुमको जो इतनी हसीन लगती है
मेरे लहू का ही है रंग इन शुआओं में

तुम्हें भले ही वो तारीफ अच्छी लगती हो
किसी का घुट रहा था दम भी वाह-वाहों में

परिन्दे, पेड़ और पर्वत—सभी उबे से मिले
अजीब रिश्ता मिला सबकी आहो-आहों में

हवा के पंख से उड़ती हुई वो खुश चिड़िया
किसे बुलाती थी अपनी सधी सदाओं में

उसे मिलेगी कहो कैसे उसकी ही मंजिल
जो बेड़ियों को लगाए हुए हैं पाँवों में

मुझे क्यों आपकी बातों से शिकायत होती
यहाँ तो शोला बरसता है बीच छाँवों में

तू डूबने से कैसे बच गया फिर अमरेन्दर
दुबारा डूब के उस झील-सी निगाहों में ।

।। 9 ।।

तुमको इस दुनिया ने अब तक है दिया कुछ भी नहीं
और तुम निकले भी ऐसे कि लिया कुछ भी नहीं

जिन्दगी माँगी है तो कैसे नहीं रोओगे
जुर्म ये इतना बड़ा है कि सजा कुछ भी नहीं

जिसको खुद पे न भरोसा हो ना औरों पर ही
ऐसे लोग दुनिया में जी के भी जिया कुछ भी नहीं

ऐसी जगहों में चला जाता हूँ अक्सर ही मैं
बारी आती मेरी–देखूँ, बचा कुछ भी नहीं

लोग आए थे बहुत गुस्से में भाषण भी हुये, मंच जमे
फिर गए घर को सभी और हुआ कुछ भी नहीं

तू ही बढ़ कर तो दिखा दुनिया को जहांआरा
अगर तू कहता है–दुनिया में खुदा कुछ भी नहीं

एक उम्मीद मेरी मुझको रवां रखती है
मैं वहाँ जाता जहाँ उसका पता कुछ भी नहीं

जख्म यारों के सहे यारों पे मरना सीखा
और अमरेन्द्र ने दुनिया में किया कुछ भी नहीं ।

।। 10 ।।

तुम भी मेरी ही तरह यार दिवाने निकले
शहर में किसको ये गजलें हो सुनाने निकले

जब भी हम घर में लगी आग बुझाने निकले
उसने अफवाह उड़ाई कि जलाने निकले

जख्म अपना जो किसी से भी मिलाने निकले
सबके इक जैसे ही, इक तरह फिसाने निकले

चिट्ठियाँ लिख के खबर घर की पूछ लेते हैं
बच्चे बूढ़ों से बड़े तेज-सयाने निकले

यादें माजी की—जिन्हें दफन मैं कर आया था
जेहन में आज उभर कर ये रुलाने निकले

जब तुम्हें भूलने का रास्ता खोजा मैंने
याद करने को तुम्हें सौ-सौ बहाने निकले

तुमने अमरेन्द्र को घर से जो निकाला, तो क्या
उसके रहने के दिलों में सौ ठिकाने निकले ।

।। 11 ।।

मैंने खुद अपनी ही आँखों से है पता देखा
साफ अक्षर में मेरा नाम था लिखा देखा

इक हवेली थी—बहुत दूर वहाँ पर्वत पर
जिसकी खिड़की न तो दरवाजे को खुला देखा

एक भी शख्स कहीं दूर तक न दिखता था
दूर तक जाता हुआ सिर्फ रास्ता देखा

तुमने रो-रो के ही तो लम्बी जिन्दगी काटी
दो घड़ी जी के भी हँसने का मैं मजा देखा

मुझमें क्या उनको नजर आता है, वो ही जाने
देखने वालों में मैंने तो बस खुदा देखा

तूने सोचा कभी ये—रात भी आ सकती है
मैंने तो शाम तलक तेरा आसरा देखा

जिन्दगी भर वो उठाता रहा है घाटे को
जिसने फनकारी में थोड़ा भी फायदा देखा

तुम गए जबसे हो अमरेन्द्र ऐसा लगता है
वह एक चिराग जों जलता था, वह बुझा देखा ।

।। 12 ।।

क्या बताऊँ मैं तुम्हें, उसके घर में क्या देखा
खून मेरा ही हुआ था—जो तलाशा, देखा

इक मदारी को नचाती थी बन्दरों की भीड़
जो न देखा था कभी, वह भी तमाशा देखा

पीछे-पीछे मैं चला आया था गुमसुम-गुमसुम
आगे-आगे में अपना मैंने जनाजा देखा

जाने क्या सोच के अक्सर मैं चौंक जाता हूँ
एक टूटा हुआ जबसे है सितारा देखा

कोई हिसाब नहीं इसका मुझे रखना है
कौन अपना था यहाँ, किसको पराया देखा

मैं अपनी प्यास लिए दरिया तलक आया था
लौट आया जो सभी घाटों को प्यासा देखा

जो कभी काफिलों के साथ चला करता था
आज अमरेन्द्र को उस राह पे तनहा देखा ।

।। 13 ।।

जिससे रिश्ते को निभाने का कोई वादा नहीं
उससे ताउम्र का याराना भी तो अच्छा नहीं
कैसे मैं कह दूँ कि फूलों ने दिया धोखा नहीं
और काँटो ने दिया साथ न हो, ऐसा नहीं
साथ-ही-साथ उसके क्यों न रोशनी हो लगी
पर ये ऐसा तो नहीं होगा कि हो साया नहीं
छोड़ सकता हूँ कभी भी तेरी ये दुनिया को
मुझको लगता है तेरी दुनिया मेरी दुनिया नहीं
तुम अब ये देखो कहाँ आदमी का नामो निशां
क्या ये देखो हो जला किसका घर और किसका नहीं
अब तो हाथों में तुम्हारे ही फैसला जो करो
द्वार पर जा के भी लौट आया किया सजदा नहीं
जाने वो कौन-सा भय से तो रहस खोल गया
सामने जिसको कि अमरेन्द्र के भी लाया नहीं ।

||14 ||

अपने करीब और जरा और ला मुझे
कुछ और उम्र के लिए पागल बना मुझे

हालत अजीब हो गई थी उस घड़ी में तब
जब खुद भी रोने लग गये थे वो रुला मुझे

पहलू में अपने ढूँढता हूँ अपना कलेजा
करना है एक जुल्म का फिर सामना मुझे

मैं सो रहा आकाश के कौफिन में था मगन
कन्धा दिया था पर्वतों ने यूँ लगा मुझे

वह आ रही थी मौत मेरी—बाँहें उठाए
समझा कि जिन्दगी ही है—धोखा हुआ मुझे

मुन्सफ की मुन्सफी भी जमाने में देख ली
उसने किया था जुर्म, मिली है सजा मुझे

मैंने दिलों की देखी हैं गहराइयां अमरेन्द्र
प्याला तू मैकदे का न सागर दिखा मुझे ।

|| 15 ||

नागफनी का यह जंगल
मैनें देखा–हुआ कँवल

नजर लगे न आँखों को
आँखों में ले लो काजल

चलने का फिर सुख देखो
दुख को तुम कर लो मखमल

कुछ मत पूछो चला कहाँ
जब तक चलता, तू भी चल

एक ओर तलवारें बजे
एक ओर बजती पायल

ऊपर से ही घास बिछी
इसके नीचे है दलदल

अमरेन्दर को माफ करो
अमरेन्दर तो है पागल ।

।। 16 ।।

खींच लाया यहाँ दरिया हमको
अब तो लहरों का सहारा हमको

ये अंधेरा तो छोड़ देता है
छोड़ता है कहाँ साया हमको

ये जमाने पे फैसला छोड़ा
क्यों कहें—उसने सताया हमको

रो तो लें पहले ही हम जी भर के
अपना ढोना है जनाजा हमको

हम तमाशा थे देखने आये
सब समझते हैं तमाशा हमको

इतने निखरे हुए हैं ऐसे नहीं
मुद्दतों दुख ने तराशा हमको

जिसको अमरेन्द्र सभी कहते हैं
वो दिखा साफ आवारा हमको ।

|| 17 ||

रिवाजो-रस्म की बातें पुरानी ढूँढता हूँ
मैं अपने दादा-दादी की कहानी ढूँढता हूँ

ये उसका जानी जंगल है जहाँ मुद्दत से मैं
तुम्हारा प्यार कोमल जाफरानी ढूँढता हूँ

जो मंजिल तक मुझे पहुँचा दे बिन धोखा लगाए
घने जंगल में नक्शे पा, निशानी ढूँढता हूँ

लहू की धार मेरी जम गई है भूल कर यह
यहाँ पत्थर-पहाड़ों में रवानी ढूँढता हूँ

तुम्हारे शेर में मीटर-बहर कुछ भी न ढूँढू
कोई जज्बः तसव्वुर जाविदानी ढूँढता हूँ

बहुत था नाज हिन्दुस्तानियों को हम हैं सोहम्
कहाँ वह खो गई ताकत रूहानी ढूँढता हूँ

लिखा जिसमें मेरे बचपन की बातें मन की बातें
वही बातें वही किस्सा-पिहानी ढूँढता हूँ

हँसी रोके नहीं रुकती थी तब शहरी लोगों से
सुना जब शहर में मैं जिन्दगानी ढूँढता हूँ

जो रेतों को भी दरिया में बदल देती थी अक्सर
बुढ़ापे की नसों में वह जवानी ढूँढता हूँ

फलेगी आदमीअत की फसल अमरेन्द्र जिससे
जमाने भर की आँखों में वो पानी ढूँढता हूँ ।

।। 18 ।।

दिन में ही अपने जिस्म के साये से डर चले
अपना ही अपने हाथों से हम खून कर चले

आँखों में किसी की भी न थे आँसू के कतरे
जब खून से लथपथ हुए हम तर-ब-तर चले

ये वाकया है मेरे सफर का अजीब ही
देहरी से नहीं पार हुए, उम्र भर चले

अब सामने है धूप सचाई की बेहिसाब
सारे हसीं वो ख्वाब के मंजर उतर चले

जंगल में जशन होने की वह बात कह गया
जैसे ही हुई शाम सभी उठ के घर चले

देखा नहीं अमरेन्द्र-सा दुनिया में कोई और
बदनामियों के बीच भी वह बेखबर चले ।

।। 19 ।।

सबमें ही जिसका चलन है
वह समय का व्याकरण है

क्यों घोटाले ये गमन हैं
मुल्क अपना है वतन है

जिन्दगी द्वारे खड़ी है
मौत आँगन में मगन है

बहर मुतकारिब से पहले
क्यों नहीं कहते यगन है

एक मेरा दोस्त है जो
आस्तिन में गेहुँअन है

बेसुरे के राग को वह
लोभ में कहता यमन है

आदमी है इस सदी का
आवरण पर आवरण है

सच को सच अमरेन्द्र का ये
बोल जाना आदतन है ।

।। 20 ।।

जिसके हाथों में शमशीर
क्या समझेगा मेरी पीर

सबको अपना चेहरा लगता
खूब बनी है यह तस्वीर

माला लेकर ही आना था
लेकर आया है जंजीर

पिंजरे में जो बन्द सुआ है
बाँच रहा सबकी तकदीर

आँसू गजलें, यारी, जिल्लत
अपनी तो इतनी जागीर

सभी एक हो गए आजकल
प्यादा, फरजी और अमीर

क्या फिर दिल अमरेन्द्र का टूटा
बहुत हो गया है गम्भीर ।

।। 21 ।।

टूटकर गिरते हैं बादल-बिजलियाँ पीछे मेरे
मैं चला करता हूँ आगे—आँधियाँ पीछे मेरे

एक दिन बदनामियों से दिल मेरा लग जाएगा
जिस तरह से हैं लगी बदनामियाँ पीछे मेरे

खोद रक्खा है जमाने ने कुआँ आगे में भी
और पहले से खुदी हैं खाइयाँ पीछे मेरे

मैं उजाले के गले में हाथ डाले जाता था
जासूसी करती रहीं परछाइयाँ पीछे मेरे

सामने मेले लगे थे वादियों में फूलों के
मैं वहाँ था और थीं तनहाइयाँ पीछे मेरे

मैं खलाओं में चला आया हूँ कुछ ही सोचकर
छूटकर सब रह गए हैं आशियाँ पीछे मेरे

क्या हुईं बातें बताऊँ क्या तुम्हें अमरेन्द्र मैं
मौत के और जिन्दगी के दरमियां पीछे मेरे ।

।। 22 ।।

किससे हो फरियाद, तपन जी कुछ तो कहिए
सब-के-सब सय्याद, तपन जी कुछ तो कहिए

कहीं नहीं संवादों का कुछ रस्ता खुलता
केवल वाद-विवाद, तपन जी कुछ तो कहिए

पूरा शहर लहू से लथपथ, घायल है
दंगा है आबाद, तपन जी कुछ तो कहिए

नहीं मानता मैं लेकिन सब ऐसा कहते
जीवन है जल्लाद, तपन जी कुछ तो कहिए

प्रेम-मुहब्बत का ऐवान कहाँ से ठहरे
शक की जब बुनियाद, तपन जी कुछ तो कहिए

शहर आए तो वेतन-बोनस में डूबे हैं
गाँव की भी है याद, तपन जी कुछ तो कहिए

अमरेन्दर-सा शायर किनारे मोखा पकड़े
नवसिखुवे को दाद, तपन जी कुछ तो कहिए ।

।। 23 ।।

सबसे पहले हटे लोग ये
आपस में ही बटे लोग ये

जरासंध बनने की सोचे
बीचो-बीच से फटे लोग ये

मेरी बातें ना समझेंगे
कुछ शब्दों को रटे लोग ये

मैंने उनका दोष बताया
मुझे मारने जुटे लोग ये

जिनको छाँट-छाँट कर लाया
पहले से थे छटे लोग ये

कभी लूट ले सकते तुमको
इतने सारे लुटे लोग ये

तलवारों की जान सहमती
जुड़ आए फिर कटे लोग ये ।

।। 24 ।।

आपस में मक्कारी थी
लौट आया लाचारी थी

मैंने समझा यारी थी
अब समझा गद्दारी थी

दुनिया से मतलब न था
ऐसी दुनियादारी थी

हत्यारे थे जुटे हुए
संसद लगी बेचारी थी

पूरी बस्ती जला गई
ऐसी वह चिंगारी थी

इतने क्यों गुमसुम थे तुम
चलने की तैयारी थी

अमरेन्दर तक मार खा गया
ऐसी मारा-मारी थी ।

।। 25 ।।

ये क्या यहाँ चारों तरफ
हैं गालियाँ चारों तरफ

इक आदमी दिखता नहीं
परछाइयाँ चारों तरफ

जब टाँग टूटी एक है
तो खाइयाँ चारों तरफ

कुछ नाम तो पाया नहीं
बदनामियाँ चारों तरफ

जब हो जरूरत लो बुला
हम हैं मियाँ चारों तरफ

अय रात की काली घटा
दे बिजलियाँ चारों तरफ

अमरेन्द्र फिर भी है खड़ा
हैं आँधियाँ चारों तरफ ।

॥ 26 ॥

जान कर जब गिरा करे कोई
ऐसी हालत में क्या करे कोई

तुम भरोसे के लायक हो ही नहीं
तुम पे क्यों आसरा करे कोई

फिर तो मयखाने में न जा बैठा
जा के उसका पता करे कोई

उनको मालूम है कहाँ कुछ भी
उनकी खातिर मिटा करे कोई

जिन्दगी भर की बात करता है
दो घड़ी जब मिला करे कोई

जब नतीजा बुरा निकलता है
काहे मुझसे लगा करे कोई

काम अपना करेगा अमरेन्दर
बात कुछ भी कहा करे कोई ।

|| 27 ||

घाटों पर पत्थर मिलते
काश यहाँ पर घर मिलते

मिलते न अब ऐसे दिल
जैसे ये अक्षर मिलते

उम्र-तुम्र की बातें क्या
तुम मुझसे पल भर मिलते

दो आलम का सुख मिलता
जब भी दो शायर मिलते

नदियाँ सागर से मिलतीं
कभी नहीं सागर मिलते

उम्र कटी इस आशा में
तुमसे हम जी भर मिलते

जैसे वह दिल खोल मिला
तुम भी अमरेन्दर मिलते ।

।। 28 ।।

जबकि दरिया हूँ इक नदी हूँ मैं
प्यासा-प्यासा-सा लगा ही हूँ मैं

न तो पंडित, न मौलवी हूँ मैं
तुमसे कहता हूँ—आदमी हूँ मैं

मैं डरूँ तुमसे किसलिए बोलो
मौत तुम हो तो जिन्दगी हूँ मैं

मुझको बरसों-दिनों में मत बाँटो
पूरी-की-पूरी इक सदी हूँ मै

मैं क्या बोलूँगा ये दुनिया कहती
इस अंधेरे की रोशनी हूँ मैं

नेकी सबके लिए ही की मैंने
आज सबके लिए बदी हूँ मैं

पेड़ ये इसलिए हरे अब तक
हाँ जड़ों की बची नमी हूँ मैं ।

।। 29 ।।

फिर न शोलों की तरह वो बरसे
बोल पाया न बस इसी डर से

शान से आया था इसी घर में
शान से जाऊँगा इसी घर से

जैसा तरसा किया है दिल मेरा
दिल किसी का न इस तरह तरसे

मैंने इतना कहा कि कल क्या हो
रोने वह लग गया इतना भर से

साथ दरिया तलक ने छोड़ दिया
लड़ गया जा के जो समन्दर से

बात ऐसी कभी न तुम करना
जो निकल जाए बेअसर सर से

घर के बदले तू खोज घूरे पर
भेंट हो जायेगी अमरेन्दर से ।

।। 30 ।।

मेरे घर के पिछवाड़े से ऊपर उठ के आए चाँद
माथे पर टिकुली-सा चमचम कितना आज सुहाए चाँद

कहाँ मिलेगा मेरा साथी, जाना है किस ओर मुझे
नभ में खुद ही चलकर मुझको राह दिखाता जाए चाँद

मेरा साथी तो न आया, उसका क्या फिर आयेगा
जिसके आने की खुशियों में बैठा रूप सजाए चाँद

जब तक छत पर निकल न आए चाँद चौदहवीं का चुपके
तब तक मेरे मन को नभ में हँस-हँस कर बहलाए चाँद

मैंने तो इससे भी सुन्दर मुखड़े देखे हैं साथी
फिर क्यों मुझको घूम-घूम कर अपना रूप दिखाए चाँद

हम दोनों की किस्मत ही ये जगने को हैं बनी हुईं
रात-रात भर तरह-तरह से मुझको यह समझाए चाँद

चाँद तुम्हें जब रात-रात भर जगना ही था ऐसे ही
क्यों न मेरे साथी को संदेश तुम्हीं दे आए चाँद

जितना कि तुम भी न मुझको तड़पाते हो रातों में
उतना तेरी याद दिला कर मुझको यह तड़पाए चाँद

मैंने तुमको कभी लगाया था सीने से अपने भी
जैसे गगन फिरा करता सीने से आज लगाए चाँद ।

।। 31 ।।

ऐसा नशा चढ़ा है मुझको यार नशीले सावन में
कर बैठा हरजाई से ही प्यार नशीले सावन में

पीने से इन्कार किया है भादो से आषाढ़ तलक
मुझसे किया न जाए अब इन्कार नशीले सावन में

आँखों में ही बस गया सावन झरझर-झरझर झरता है
दिल दे बैठा क्यों तुमको बेकार नशीले सावन में

बिन पूछे जबकि यह सावन छेड़ रहा है हमको तो
छेड़ेंगे हम तुमको भी सौ बार नशीले सावन में

देख हमें क्या जाने दिल ही आ जाए वो इसीलिए
बैठे हुए हैं करके सौ दीवार नशीले सावन में

क्या जाने कब विरह की मारी आ जाए हमसे मिलने
खोले हैं हमने अपने सब द्वार नशीले सावन में

सावन में सब पढ़ने बैठे पिय की पाती उलट-पुलट
अमरेन्दर बैठा पढ़ने अखबार नशीले सावन में ।

।। 32 ।।

ये जो अमरित है इसे बोलो जहर कैसे कहूँ
साफ दिखता है अलिफ जेरो जबर कैसे कहूँ

कह दिया सारा जुबां से जो कहा था उसने
उसकी आँखों से जो मिलती है खबर कैसे कहूँ

रंग मिलता हो अगर दो का तो दो एक नहीं
चाँदनी रात को बोलो मैं सहर कैसे कहूँ

जिन्दगी से था परेशां दी खुशी मौत ने है
ये तो है इसकी हुनर उसकी हुनर कैसे कहूँ

कौन बचकर यहाँ से निकला तेरी उलफत में
जानता हूँ मैं, भँवर है ये, भँवर कैसे कहूँ

लोग इस गाँव में पेड़ों के तले रहते हैं
इनको घर चाहिए ये बात मगर कैसे कहूँ

होश बाकी ही नहीं रहता है कुछ कहने को
हाय अमरेन्द्र की गजलों का असर कैसे कहूँ ।

।। 33 ।।

स्याही से बैठे-बैठे मत दीवारों पर काला लिख
इन अन्धेरी रातों में केवल तू एक उजाला लिख

जहाँ-तहाँ बिन सोचे-समझे यूं ही नहीं 'बटाला' लिख
लिखना है तो इसी जगह पर यार तू 'जलियांवाला' लिख

उनसे ही जा के तुम पूछो शीतलता कैसे आए
जो कहते हैं तुमसे केवल लिखो अगर तो ज्वाला लिख

मत लिख तुम यह लोभ के मारे यह सियार की माँद-गुफा
दिखता है यह साफ शिवाला इसपर साफ शिवाला लिख

बहुत लिखे तुम दीवारों पर नाम सियासत वालों के
अब इन नामों के बदले तुम नाम नजीर, निराला लिख

लिखना बाद में दिखता है यह वैसा-ऐसा उपमा में
पड़े हुए पाँवों के छाले को पहले तू छाला लिख

आने दो महबूब वक्त वह जब बोलूँगा मैं तुमसे
मेरे लब पर लिखो तिश्नगी अपने लब पर प्याला लिख

सत्ता का अधिकारी बन जुम्मन जमीन को हड़प गया
प्रजातन्त्र की जनता भटकी फिरती बनकर खाला लिख

जिस तरह रह रहा हूँ मैं अपने ही देश में ऐ यारो
लिखना अगर तखल्लुस मेरा तो फिर देशनिकाला लिख ।

।। 34 ।।

समय बड़ा कातिल लगता है
कैसे सबका दिल लगता है
जैसा है शासक इससे तो
गुण्डा ही काबिल लगता है
जैसे-जैसे भक्त जुटे हैं
मन्दिर भी महफिल लगता है
जिसको लोग समुन्दर कहते
मुझको वह साहिल लगता है
लोकतंत्र में लोगों से छल
जैसे अब हासिल लगता है
जनता गेहूं, धान, चना, जौ
नेता सबका मिल लगता है ।

।। 35।।

कब हुई जो आज हो जायेगी सरकारी गजल
खुद बचाना जानती है अपनी खुद्दारी गजल

कल मुहब्बत की सौ बातों से यही लबरेज थी
आज मजलूमों के आँसू से हुई भारी गजल

गीत से नवगीत से पीछे हटे सारे कवि
आज सब पर पड़ रही है किस तरह भारी गजल

तुमने जो बदले नहीं अपने चलन अपने ये ढ़ंग
मैं तुम्हारे साथ चल सकता नहीं शॉरी गजल

आज तक जो सीने पे पत्थर लिए चलती रही
रो पड़ी मिलते ही मुझसे दुख की ये मारी गजल

तब तलक है आदमी की रूह को खतरा नहीं
जब तलक कि आदमी के जिस्म में जारी गजल

यूँ तुम्हारे गीत हैं अमरेन्द्र सब ही पुरअसर
पर सुनाओ आज अपनी तुम कोई प्यारी गजल ।

।। 36 ।।

मैं इसे कैसे कह दूँ है प्यारी गजल
साफ दिखती है जो अधकपारी गजल

सबके चेहरे उड़े तो उड़े रह गये
मैंने ऐसी कही इक करारी गजल

आज कल भेड़ियों में यही चर्चा है
हो गई है बहुत ही शिकारी गजल

दस की बातें यहाँ दस के आँसू यहाँ
मेरी गजलें सभी दसदुआरी गजल

कौन शामिल नहीं था मेरे कत्ल में
जाके किससे करे मारामारी गजल

उनको जा कर सँवरना पड़ा है तभी
मैंने जब-जब भी है ये सँवारी गजल

जितनी भी दाद दूँ वह बहुत ही है कम
खूब अमरेन्द्र है ये तुम्हारी गजल ।

|| 37 ||

मेरे घर की छाया–फूल
दीवारो, दर, पाया–फूल

उसके बँधे हुए जूड़े में
मैंने एक लगाया फूल

फुलवारी-सी महक गई वह
मुझे देख कर लाया फूल

तुम धरती की नारी हो या
नभ का एक चुराया फूल

काँटे मुझसे बहुत लड़े हैं
जब भी एक बनाया फूल

बिन सोचे यह फूल कौन-सा
मैंने गले लगाया फूल

जंगल एक दिन जल जाएगा
तुमने अगर जलाया फूल

सबको है भरमाए रखता
सृष्टि पर है माया फूल

मैं काँटों पर बरसों दौड़ा
मेरे हिस्से आया फूल

तुमको अब मैं फूल कहूँगा
अंग-अंग है काया फूल

खुशबू को कैसे रोकोगे
माना हुआ पराया फूल

कब आओगे तुम वसन्त फिर
लगता नहीं अघाया फूल

लुटा चुका जब अपनी खुशबू
तब जा के मुरझाया फूल

मेरे दिल को चीर के देखा
तो लोगों ने पाया फूल

तुम तो फूलों से बढ़ निकले
देख तुम्हें ललचाया फूल

मैं दौड़ा परदेश से आया
आँगन में जब आया फूल

सबने सिक्के, सोने, चाँदी
मैंने मगर उठाया फूल

अमरेन्दर क्या खुशबू जाने
तुमने कभी बढ़ाया फूल ।

।। 38 ।।

जिसे न राह मालूम है भला क्या रहबरी देगा
तू धोखे में हो मंजिल का पता वह क्या सही देगा

धुआँ से भर गया घर अब अन्धेरा ही अन्धेरा है
जलाया था दिया मैंने कि मुझको रोशनी देगा

तू मुझसे कह रहे हो मैं यकीं कर लूं मगर सोचो
जो जीवन भर रहा रोते भला क्या वह खुशी देगा

वही सर पर तुम्हारे काँटों का भी ताज रक्खेगा
तुम्हारे हाथों में कचनार की जो भी कली देगा

कोई भी गम नहीं होता है सारी जिन्दगी भर का
अन्धेरे से न घबड़ाओ यही फिर चाँदनी देगा

दुआ माँगी थी मैंने आदमी की बस्ती हो हासिल
मुझे मालूम क्या था इस तरह दुख आदमी देगा

अभी तुमको भले ये लग रहा हो क्या करूँगा मैं
यकीं रक्खो यही अमरेन्द्र इक दिन जिन्दगी देगा ।

।। 39 ।।

बाघ, भालू, भेड़ियों से सामना है
तुरत सोचो ठहरना या भागना है

जो करे अपराध पूजित ही रहे वो
आपकी सबसे अलग यह भावना है

हो गया तय रात में भूकम्प होता
दिन में सोना रात को अब जागना है

वह बने वामन तो रह सकता नहीं
तीन लोकों को जिसे कि नापना है

अब नहीं आँखों को होता है नसीब
द्वार-देहरी आँगने में अलपना है

इस सदी में और है यह काम करना
आग पर पानी के अक्षर छापना है

गालियाँ अमरेन्द्र को दे पाओ इज्जत
यह तो घर को ही जला कर तापना है ।

।। 40 ।।

ये शोभा नहीं देता तुमको सिहर जा
मसोमात की है फसल बेटे चर जा

डराए अगर तुमको दरिया की मौजें
तू दरिया के सीने में चल के उतर जा

मेरी ओर ताने गुलेली की गोली
मुझे कह रहा है वो बरसों से डर जा

जनाजे को मेरे लिए चलने वाले
जरा देख लूँ अपने घर को ठहर जा

कोई डेंगू, ड्रोप्सी को कोई दिखाता
मेरे आका इससे भी आगे तू कर जा

है सरकार में सरसों में भी मिलावट
जो जीना यहाँ है तो जी वरना मर जा

सभी की निगाहें तुम्हीं पर कड़ी हैं
बहुत रात बीती अमरेन्दर तू घर जा ।

।। 41 ।।

कल तुम्हारे यहाँ जो तमाशा हुआ
अपने घर में ही मेरा है देखा हुआ

वह वही था वही रूप आदत वही
मुझको ही और होने का धोखा हुआ

सबने पढ़-बेपढ़े फेंक ही तो दिया
क्या हुआ सबके हाथों का पर्चा हुआ

अब जरूरत है बस दूध को धोने की
जो मिला, दूध का था वो धोया हुआ

वह चला था तो सीधे सही चाल से
मेरे सीने से लगते ही तिरछा हुआ

रात भर ही नहीं सोया गुनता रहा
किसलिए उस जगह मेरा चर्चा हुआ

कल यही दिल गले में था ताबीज-सा
आज पीछे गली में है फेंका हुआ

इतना परिचय ही काफी है अमरेन्द्र का
जब हिली कोई छत उसका पाया हुआ ।

|| 42 ||

अलग हैं चाहने वाले कई तो घर उठा लाए
जिन्हें यह रास न आया तो वो खंजर उठा लाए

मुझे तो स्वाति की दो-चार बूंदों की जरूरत थी
ये लाए भी तो क्या लाए जो तू सागर उठा लाए

सुना था चाँद पर दादी वहाँ तकली चलाती है
वहाँ पहुँचे भी तुम लेकिन यहाँ पत्थर उठा लाए

बड़े ही शौक से अपना ये दिल दे आए थे तुमको
तुम्हारी बेरुखी ही देख कर आखिर उठा लाए

मेरी वीरानगी दिल की न जानी थी न जाएगी
मेरे क्यों वास्ते तुम स्वर्ग का मंजर उठा लाए

कहाँ तब ढूँढते हम उड़ गया जो है कबूतर को
बस इस दिल को तसल्ली के लिए ये पर उठा लाए

बिगाड़ेगा ही महफिल को कहेगा बेतुकी गजलें
तुम्हें लाना 'अनिल' को था ये 'अमरेन्दर' उठा लाए ।

।। 43 ।।

गर दुख नहीं है मेरे लहू के बहाव पर
ऐसे तो छिड़किए न नमक मेरे घाव पर

मंजिल से जहाँ दूर वहीं लौटना मुश्किल
हम आ गए हैं घूम के कैसे पड़ाव पर

कैसे कहूँ कि पीठ पर उसकी न होंगे घाव
सेंका गया है हर कोई जबकि अलाव पर

मैं क्या कहूँ कि मन में तमन्नाएँ क्या उठतीं
बारिस में जब भी होता है दरिया बहाव पर

चेहरे पे हँसी मन में द्वेष—इतना भेद है
यह देश कैसे चल रहा है इस सोभाव पर

बेहतर है लोग अपने घरों से निकल पड़े
दरिया का बाँध आ गया है जब कटाव पर

मानेंगे नहीं लोग ये वैसे ये सच ही है
लाया है मैंने दरिया को लादे ही नाव पर

अब जो भी होगा होगा देखा जाएगा अमरेन्द्र
पहले तो दिल था दाव पर अब जां है दाव पर ।

।। 44 ।।

हो विरोधी एक हो जाते हो क्या है
तुम न बोलोगे मुझे मुझको पता है

वह जो रहता है हवेली में नगर के
कोतवाली-थाने में उसका पता है

नाव को सागर में धीरे से उतारो
आँधी का भी डर है जोरों की हवा है

चन्दनों के वन सभी से पूछते हैं
राज क्या है जो वीरप्पन लापता है

कौन जा-जा के समझाए ये उसको
शहर के दादा से लगता है—गधा है

भोजपुर में कत्ल का है कौन दोषी
दिल्ली में इस बात का चर्चा चला है

उसके हाथों में खड़ी तलवार अब भी
और मेरी देह पर झुलता गला है

ये गजल तो एक दिन बस जान लेगी
गीत ही लिक्खो उसी में फायदा है

देखिए जिसको भी वह गुमसुम बना है
दोस्त यह अमरेन्द्र भी क्या भाजपा है ।

।। 45 ।।

छोटी-छोटी बिखरी है दुनिया बहुत
और सब में दुख ही दुख पाया बहुत

बचके निकला काँटों से हर बार मैं
मुझको फूलों ने ही उलझाया बहुत

मैं जिसे था ढूँढता वह था कहाँ
यूं तो उसने फोटो दिखलाया बहुत

भर गई इक बूँद है मुझको कभी
जब नदी ने ही रखा प्यासा बहुत

क्यों डरा जाता मुझे भय रात का
हैं जहाँ अमराइयाँ—छाया बहुत

ब्रह्म है गायब यहाँ सबसे जुदा
हर कदम पर है लगी माया बहुत

पूछिए जिससे कहेगा कुछ न कुछ
आम है अमरेन्द्र का किस्सा बहुत ।

।। 46 ।।

गजल कहो आसान नहीं है
लेकिन यह वरदान नहीं है

गजल बयां की बारीकी है
रुक्नों का अरकान नहीं है

अपना दुख तो कलियुग जैसा
दो दिन का मेहमान नहीं है

जीवन मेरा एक कहानी
जिसका कुछ उनवान नहीं है

खून हुआ सब चुप हैं वैसे
कातिल पर अनजान नहीं है

जब तक चाहो सुख से रह लो
दिल, है अफगानिस्तान नहीं है

मारोगे तो रोएगा ही
अमरेन्दर भगवान नहीं है ।

।। 47 ।।

भीतर जब मन गलता है
आँसू बना निकलता है

फिर गजलों के आँसू छलके
फिर किसका दिल जलता है

मेरी गजल उसी की बातें
जो दुख में ही पलता है

उसके हाथ कहाँ से होंगे
हाथों को जो मलता है

क्या होगा तलहटवासी का
पर्वत खड़ा दहलता है

अमरेन्दर की गजल सुनाओ
जिसका सिक्का चलता है ।

।। 48 ।।

जो जितना ही ऊपर से दिखता निडर था
सचाई थी भीतर से उतना ही डर था

चले साथ मंजिल तक पर अजनबी से
अजब फासले का वह मेरा सफर था

लड़ा मैं निहत्थे मरा भी तो मैं ही
सभी बचके निकले वो ऐसा समर था

न ईंटा न पत्थर न पाया न छप्पर
जिसे तुमने देखा वह मेरा ही घर था

न कहते न हँसते बस चलते सभी थे
यकीं मानो कस्बा न गाँव था—नगर था

सभी तो वहाँ थे जब अमरित पिया था
अभी लोग कहते हैं वह तो जहर था

मरा जा रहा था जो अपने किए पर
तो मेरी ही गजलों का उस पर असर था ।

।। 49 ।।

कागज पे अब न तेरी जवानी लिखूँगा मैं
जलती हुई दुनिया की कहानी लिखूँगा मैं

प्यासी हुई ये रेत ये सूखी हुई नदी
तुम आग हो लिक्खो यहाँ पानी लिखूँगा मैं

औरत तेरे लिए तो नुमाइश की चीज है
वैसे है भवानी ही, भवानी लिखूँगा मैं

तुमको पसंद दोहा बिहारी के तो लिखो
मुझको पसन्द 'वानी' है 'वानी' लिखूँगा मैं

जिस चीज को तू मान लिया है अजर-अमर
मैं जानता हूँ फानी है फानी लिखूँगा मैं

मिलजुल के लिखें, तुम तो लिखो मुस्कराहटें
ये दाग दिल के, दिल की निशानी लिखूँगा मैं

अमरेन्द्र तुमने जुल्म जो यारों के झेले हैं
जिन्दा रहा तो उसकी कहानी लिखूँगा मैं ।

।। 50 ।।

मौत ही मौत थी, खुदकुशी दूर तक
मैंने देखी नहीं जिन्दगी दूर तक

ढूँढता था मैं अपनी खुशी दूर तक
बेबसी-बेकली ही मिली दूर तक

काली रातें हैं काटी यही सोचकर
सामने है बिछी चाँदनी दूर तक

तुमने दिल में जलाया था जो इक चिराग
मिल रही है मुझे रोशनी दूर तक

तुमको ऐसा लगेगा चला ही नहीं
चल के देखो मेरे संग कभी दूर तक

दोस्ती का तो वादा किये आया था
पर निभाता गया दुश्मनी दूर तक

मेरा उठना था दुनिया की दहलीज से
बात जो भी दबी थी उठी दूर तक ।

।। 51 ।।

अब भरोसा क्या किसी का
जब न अपनी जिन्दगी का

उम्र भर रोना पड़ेगा
दाम जो पूछा खुशी का

तुमसे मैंने दिल लगा कर
हाल जाना दोस्ती का

कमर नंगी जेब भारी
रूप पाया इस सदी का

इस अंधेरे की गली में
किस जगह घर रोशनी का

आदमी के दिल को देखा
दिल नहीं था आदमी का

अब नहीं है तो हुआ क्या
था जमाना शायरी का ।

|| 52 ||

जब तुम्हारी यादों की मैं मस्तियाँ ले कर उठा
तो जमाना भी मेरे संग गालियाँ ले कर उठा

बुझ गया मैं खुद, बचाता क्या चिरागों को भला
इस कदर वह हर तरफ से आँधियाँ ले कर उठा

नाउमीदी की घटाएँ ले के फिर वह आ गया
मैं भी उम्मीदों की अपनी बिजलियाँ ले कर उठा

था कठिन धरती को ऊपर तक उठाना इसलिए
तेज निकला वह जो ऊपर आसमां ले कर उठा

जानता था—कद्र क्या मेरा करेंगे लोग ये
मैं उठा तो अपने सब नामो निशां ले कर उठा

कुछ हवा कुछ रोशनी मुझको भी शायद मिल सके
इसलिए आकाश तक मै खिड़कियाँ ले कर उठा

जब तलक बैठा रहा हँसता रहा गाता रहा
जाते-जाते क्या हुआ जो सिसकियाँ ले कर उठा ।

।। 53 ।।

यराना जब पत्थर से
क्या घबराना ठोकर से

लौट नहीं अब आयेगा
निकला है अपने घर से

कट जायेगा फूलों-सा
बतियाता है खंजर से

भीतर-भीतर आग दिखा
बर्फ था जितना बाहर से

नदी गाँव की याद आई
मिल आया जब सागर से

कल तक जीवन को तरसा
मौत की खातिर अब तरसे

जीने का ढंग जान गये
मिले थे क्या अमरेन्दर से ।

।। 54 ।।

बस जमीं ही है नहीं, है आसमां मेरी गजल
जिस तरफ देखोगे तुम होगी अयां मेरी गजल

जिनकी आँखों पर चढ़ा है शीशा काले रंग का
उनको धोखा हो रहा है, है धुआँ मेरी गजल

मैं किसी भी एक की खातिर कभी लिखता नहीं
एक पूरा मुल्क है हिन्दोस्तां मेरी गजल

जो कि अपने मतलबों के वास्ते जीते यहाँ
ऐसे लोगों के लिए है गालियाँ मेरी गजल

जो तुम्हारे जुल्म पर कुछ आज तक न कह सके
है उन्हीं मजलूम लोगों की जुबां मेरी गजल

आदमी ठिगना लगे और कुर्सियाँ ऊँची हुईं
ले के मुझको आ गई है ये कहां मेरी गजल

आज यह बोले न बोले तुमसे या अमरेन्द्र से
एक दिन बोलेगी मेरी दास्तां मेरी गजल ।

।। 55 ।।

आज जो लगती फकीरों की दुआ मेरी गजल
एक दिन होकर रहेगी ही दवा मेरी गजल

वाहवाही-फब्तियाँ कुछ और क्या इसके सिवा
जोड़ कर देखो कि तुमको क्या मिला मेरी गजल

ये भले भूखे हों नंगे दिल के लेकिन साफ हैं
इस गली के आदमी से दिल लगा मेरी गजल

आज तक रोते ही तुमने जिन्दगी काटी—कटी
अब जमाने को हँसाओ, मुस्करा मेरी गजल

हिन्दी या उर्दू गजल मेरी गजल को मत कहो
राम-लक्ष्मण मीर, कासिम, मुस्तफा मेरी गजल

कल विपक्षी थे तो लगती थी यही संजीविनी
आज उनको लग रही है हादसा मेरी गजल

अब यहाँ पर मजमा वाले तालियाँ पिटवाएंगे
चल यहाँ से बोरिया-बिस्तर उठा मेरी गजल

फिर जरा धड़के मेरा दिल फिर जरा आँखें हो नम
फिर उसी दिन का जरा चर्चा चला मेरी गजल

क्या कहीं अमरेन्द्र से बातें हुईं फिर राह में
इस तरह बेचैन क्यों हो, क्या हुआ मेरी गजल ।

।। 56 ।।

यह नहीं कि नाजो नखरा और नजाकत है गजल

जिन्दगी की साफ तस्वीरें, हकीकत है गजल

तुम कहो और दूसरा समझे नहीं उस बात को
ऐसे तर्जे कवत से सीधी बगावत है गजल

जिसके सीने में नहीं जलती मुहब्बत की है आग
वह नहीं समझेगा इसको कि मुहब्बत है गजल

लोग लिख कर गीत को कहते गजल पढ़ते भी हैं
तब गजल के वास्ते होती मुसीबत है गजल

मरने से पहले गजल में यह भी वह लिखता गया
उम्र भर जाती नहीं यह ऐसी चाहत है गजल

हम फकीरों से इसे ये हुस्नों शक्लो रूप है
मत कहो ऊँचे घराने की बदौलत है गजल

अब हिफाजत से इसे रखना तुम्हारा काम है
मेरी उम्मीदो तमन्ना की वसीयत है गजल

कह नहीं सकता गजल किसकी किसे कैसी लगी
पर सुनी अमरेन्द्र की जो वह कयामत है गजल ।

।। 57 ।।

छुट्टी को मनाने में मुलुक मस्त-मस्त है
26 जनवरी है, ये 15 अगस्त है
सब लोग बराबर ही थे जिसकी निगाहों में
सबकी नजर में आज वो फिरकापरस्त है
सरकार हमें देखे कहाँ उसको है फुर्सत
कुनवे को मनाने में ही वह अस्त-व्यस्त है

हैवानियत का हौसला कितना बुलन्द है
इन्सानियत का रूहो बदन पस्त-पस्त है
शकुनि की कुटिल चाल नहीं हार पांडव की
कुरुक्षेत्र कहेगा कि ये किसकी शिकस्त है
ये लोग खड़े फैसले को जबकि देश में
धारा भी, संविधान भी सब कुछ निरस्त है
दंगाइयों को छूट है-चाहे वो जो करे
अमरेन्द्र पे पहरा पुलिस का और गस्त है ।

।। 58 ।।

सहरा में खड़ा एक शजर देखते रहे
वह झूठ था आँखों से मगर देखते रहे
जिसकी थी तुमको खोज वो आ के चला गया
तुम बेखुदी में डूबे किधर देखते रहे
अब कौन कहे लौटना होगा-न-होगा फिर
मुड़-मुड़ के मुझसे छूटा वो घर देखते रहे
कर-कर के इन्तजार भी गाँव सो चुका होगा
रुक-रुक के अगर सारा शहर देखते रहे
ये ताजो-महल सबको तो होते नहीं नसीब
हम दूर से ही हिलते चँवर देखते रहे
मुड़ कर भी नहीं देखा जब वो राह में मिला
जिसको कि हम तो सारी उमर देखते रहे
किस्ती ये तुम्हारी लगेगी पार क्या अमरेन्द्र
दरिया का तुम जो मौजो लहर देखते रहे ।